प्रथम संस्करण
जून, १९६२

मूल्य
दो रुपये पचास नये पैसे

प्रकाशक :
राजपाल एण्ड सन्ज़,
पोस्ट बॉक्स १०६४, दिल्ली



कार्यालय व प्रेस :
जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२



बिक्री-केन्द्र :
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मुद्रक :
भारत मुद्रणालय, शाहदरा, दिल्ली

ATRIPTA : KANTA SINHA : NOVEL

अतृप्ता

अतृप्ता

कानपुर

दिनेश,

तुम्हारा पत्र मिला। वधाई, वहुत-वहुत वधाई।

तुम पूछोगे यह दो-दो बार वधाई क्यो लिख रही हू जबकि तुमने मुझे अपने पत्र मे इगित कर दिया है कि तुम पिता बनकर गर्व नही वरन् लज्जा का आंचल पकड़े हुए हो। तो सुनो दिनेश, भूल जाओ अब पुरानी सुनीता को, उस अवोध यौवना को, जिसने इस ससार मे चौदहवा वसन्त देखते-देखते अपने जीवन मे पहली वार, हा, पहली वार तुमसे ही स्नेह से सीजा या प्यार से भीगा आश्रयण पाया था। तब उसने अपनी सारी सुध-बुध खो दी थी। और आज, जवकि चौवीसवें वर्प की सीढिया भी गिन चुकी है और इस ससार की नज़रो मे एक ग्रेजुएट है, तुम्हारे ही ध्यान मे मग्न रहती आई है। परन्तु इस एक ही घटना से, अव मन को मोडना होगा। जो वहुत-वहुत अपना था, इस एक ही तुम्हारे पत्र ने उसे अब वहुत-वहुत पराया वना दिया है।

आज मुझे अपने से ही रहरहकर घृणा हो रही है। वड़े दादा जब तुम्हारे विवाहित होने का यदा-कदा ताना देकर झुझलाया करते थे, तो मैं सोचा करती थी, कैसे पुराने विचार के है वडे दादा! किन्तु उनका कहना कितना सच था यह आज ही जान पाई हू। तुमसे जब कभी भी कहती थी, 'दिनेश यह प्रेम वाछित नही, वैध नही, मेरा और तुम्हारा मिलन सम्भव नही, तो तुम हसकर कहा करते थे, 'वचपन मे माता-पिता के कहने से किया हुआ विवाह मेरा मन स्वीकार नही करता, हमारा मिलन कोई रोक नही सकता, सुनीता, तुम धीरज रक्खो।'

पत्र तुम्हारा कल मिला था, उसमे फिर वही वायदा लिखा था। मुझे उस वायदे मे कोई शक नही, सशय भी नही, परन्तु यह जानकर कि माया मा बनी है, एक बरसाती रात की तुम्हारी भूल को लेकर ही बनी है, तो यह वायदा कैसे निभाया जा सकता है? कम से कम मेरी ओर से तुम मुक्त हो। मैंने आज तक एक पत्नी का अधिकार छीना है, परन्तु एक मा का अधिकार मुझसे छीना नही जाएगा। मेरे सम्मुख तुम पिता बनकर लज्जा का आचल पकडे हो, ऐसा तुमने लिखा है; परन्तु मुझे तुम अपनी मीठी-मीठी बातो से अब और अधिक भुलावा नही दे पाओगे। मेरी बन्द आंखें अब खुल गई हैं। एक नारी, एक नारी के साथ ऐसा कैसे कर पाई, यह सोचकर ही घृणा से मन भर उठता है, फिर मैंने तो स्वय ऐसा किया है, सोचो तो, मेरी आत्मा को कितनी पीडा होती होगी यह सोच-सोचकर! उसके और उसके बच्चे की मंगल कामना ही अब तुम्हारा कर्तव्य है, धर्म है। इन बीते बरसो की सौगध, तुम मुझे भूल जाना।

कभी तुम्हारी

सुनीता

पत्र लिखकर मैंने उसे पढा भी नही, शीघ्रता से बन्द कर बाहर जाकर लक्खू चौकीदार को दे दिया, बोली, "देखो लक्खू, यह पत्र तुम अभी ही जाकर डाल आओ, बहुत आवश्यक है।"

लक्खू बोला, "हा बिटिया, अभी दो मिलिट मे डाले देता हू।"

मेरी सशकित दृष्टि एक बार चारो ओर घूम गई। बडे दादा का कमरा बन्द है, छोटा भाई सोम घर पर नही है, शहर काम से गया है तो अभी लौटा ही नही, किसीको इस पत्र के डालने की सूचना ही नही होगी, सोचकर मैंने एक गहरा निश्वास लिया। गैलरी का दरवाज़ा बन्द कर मैं अपने पलग पर आकर औंधे मुह पड गई। लिखने को तो मैंने लिख दिया था, 'दिनेश मुझे भूल जाना,' पर क्या स्वय मैं दिनेश को भुला पाऊगी? इन बीते हुए बरसो की मधुर स्मृति का एक-एक दिन मेरे मानस-पटल पर अकित है; न चाहते हुए भी अनजाने मे ही वह सब रह-रहकर आखो

के आगे घूम जाता है ।

क्या नही देखा इन दस बरसों मे ? दिनेश तो मानो सहानुभूति, स्नेह और प्रेम की प्रतिमूर्ति होकर ही मेरे जीवन मे आया था। मुझ अनाथ बालिका को दिनेश से पहले कभी किसीने प्रेम नही दिया, दी केवल प्रताड़ना, उपेक्षा और घृणा। बड़े दादा के हृदय के किसी छोर मे तीनो छोटे भाई-बहिन के लिए स्नेह तो अवश्य है, परन्तु इसपर एक आवरण पडा है और कभी-कभी जब किसी तूफान से वह आवरण हिलने लगता है, तो भीतर से स्नेह एव सहानुभूति की किरणें चमकने लगती हैं, तब बड़े दादा दोनो हाथ आखो पर रख ज़ोर से चिल्ला उठते हैं, "मा मुझे क्षमा करना, मैं अपने छोटे भाइयो और बहिन के साथ न्याय नही कर पाया।" मुझे आज भी याद है वह दिन जब बड़े दादा को पहली बार दिनेश के और मेरे सम्बन्ध के बारे मे मालूम हुआ था। बड़े दादा तब अभी इन्स्पैक्टर पुलिस ही थे। घर पर तीन दिन की दिवाली की छुट्टी मे आए थे। आकर गोल कमरे के दीवान पर बैठे ही थे कि साथ की कोठी मे से चाचीजी आ गईं। हाथ मे दिनेश का पत्र लिए बडी लुभावनी चाल से चलती वे बडे दादा के समीप ही जाकर बैठ गई थी। हलके हरे रग की साड़ी मे उनका गोरा और गदराया हुआ शरीर, किसी विदेशी सैण्ट की महक लिए हुए समूचे कमरे की वस्तुओ पर अपना प्रभाव अकित कर रहा था। फिर बडे दादा तो सदैव से चाची-जी से प्रभावित रहे हैं। बडे दादा का चेहरा थकान और धूल से भरा था, चाचीजी ने बडे स्नेह से कहा, "जितेन्द्र, बहुत थके-से लग रहे हो, क्या पहले स्नान करोगे ?"

"नही चाची, आप तो जानती हैं जब कभी मैं नौकरी से घर आता हू तो पहले यहा का समाचार पूछता हू, इसीलिए तो आपको कष्ट दिया है।"

"जितेन्द्र, जब तक मैं जिन्दा हू तुम्हे इस घर की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है। सब कोई ठीक से है। नरेन्द्र का पत्र भी लखनऊ से कल ही आया था। इस बार थोडा पैसा माग रहा है, उसीकी सिफारिश के लिए मुझे पत्र लिखा गया। सोमेन्द्र भी पढ़ाई ठीक से कर रहा है। और

करे भी क्यो न। एम० ए० की पढाई कोई मज़ाक थोडे ही है।" इतना कह-कर चाचीजी ने अपने सर का पल्ला ठीक किया और चुप हो गईं। मैं साथ के खानेवाले कमरे के पर्दे मे से चाची के चेहरे के भावो को पढने की चेष्टा करती रही परन्तु ठीक से देख नही पाई थी। मैंने मन ही मन कल्पना की, इस समय चाचीजी मेरा पत्र देने के लिए छटपटा रही होगी, परन्तु जब तक बडे दादा पूछेगे नही मेरे लिए, तब तक तो वे चुप ही रहेगी।

तभी बडे दादा का भारी तथा रोबीला स्वर कानो मे पडा, "और सुनीता! वह कैसी है, ठीक से पढाई कर रही है न? है तो अभी इण्टर का पहला वर्ष, परन्तु फिर भी खयाल तो अभी से रखना पड़ेगा।"

तब चाचीजी बोली, "जितेन्द्र, उसका तो तुम विवाह कर दो, लडका उसने स्वय ही ठीक कर लिया है।"

"हैं, क्या, क्या! ज़रा ठीक से समझाकर कहो चाची!" आश्चर्य-भरे स्वर से बोले थे बडे दादा।

"समझाकर क्या कहू! यह लो दिनेश त्रिवेदी का पत्र सुनीता के नाम। आज अचानक मेरे हाथ लग गया, अब तुम ही पूछ लो बाकी सब।"

मेरी तो मानो सास ही रुक गई थी। पाव सुन्न ठडे पड गए थे। बड़े दादा ने पत्र पढकर मुझे आवाज़ दी, "सुनीता!"

मैंने धीरे-धीरे पर्दा उठाया और भीतर बडे दादा के सामने जाकर खडी हो गई।

बड़े दादा ने कडकते हुए शब्दो में कहा था, "सुनीता, दिनेश विवा-हित है, उसकी पत्नी है जिसको वह अपने गाव मे ही रखता है, इसीलिए तुम्हारा विवाह मैं वहा कभी भी नहीं कर सकता। तुम आज मुझसे वायदा करो कि फिर कभी दिनेश को पत्र नही लिखोगी और न मिलोगी।"

बडे दादा क्रोध मे हाफ रहे थे। इधर से उधर टहल रहे थे, हाथ मे पुलिसवालो जैसा छोटा-सा गोल हटर था, जिसको देखकर मेरी आत्मा काप गई थी परन्तु फिर भी मुह से बोली नही निकलती थी। इसपर बडे दादा बडे ज़ोर से चिल्लाए, "बोलो, उत्तर क्यो नही देती।"

मुझसे बोला नही गया। मैं कैसे अपने ही मुह से अपना रास्ता बद कर लेती ? दिनेश तो मेरा सर्वस्व था।

बडे दादा मेरे समीप आकर खडे हो गए।

"बोलो सुनीता, नही तो इस हटर से ही तुम्हारी खबर लूगा। जो आज तक नही किया वह अब करूगा।" इस निगोडे मन का क्या करती ? दिनेश ही दिनेश उसके रोम-रोम मे बसा था।

धम ! धम !! धम !!! और मेरी ज़ोर से एक चीख निकल गई थी। उसकी परवाह न करते हुए भी बडे दादा ने दो-तीन हटर मेरी टागो पर दे दिए। मैं खडी न रह पाई, फर्श पर बिछे कालीन पर गिर गई। गिरते-गिरते एक कुर्सी के हत्थे पर मेरा सिर पड गया और फूट गया। खून बहने लगा। वेदना से मैं ज़ोर से चिल्लाना चाहती थी, परन्तु शरीर मे इतनी शक्ति नही थी। मेरी आखो के आगे अधेरा छाने लगा था, बेहोश हो गई थी। पीछे जब होश आया था तो जीवन मे पहली बार बडे दादा को अपने लिए चिन्तित पाया था। सोमेन्द्र ने बताया था कि बडे दादा मा-बाबूजी के चित्र के आगे बड़ी देर तक सिर झुकाए खडे रहे थे और फिर मेरे पास आकर बोले थे, "सुनीता, उठो ; मार दो ऐसे भाई को जो कसाई की नाईं अपनी बहिन को मारता है।" सोमेन्द्र से सुनकर उतनी पीडा मे भी मुझे सुख मिला था, जैसे किसीने दुखते हुए सिर के घाव को स्नेह से सहला दिया हो। परन्तु बड़े दादा की सहानुभूति अतीव अमूल्य है। उसको पाना बडे भाग्य की बात है। अधिकतर तो बडे दादा बिगडे ही रहते है और उस दिन से तो ऐसे बिगडे है कि मैं सोने की भी हो जाऊ तो भी उन्हे प्रसन्न नही कर पाऊगी। वैसे ही जीवन इतना यन्त्रवत् था, इतना कडा बधन था चाचीजी का कि मैं जिस रग का चाहू उस रग का कपडा नही पहन पाती थी, जैसा चाहू वैसा खा नही पाती थी, उसपर दिनेश के लिए उलाहने। दिनेश के नाम पर कितनी-कितनी यातनाए सही है मैंने! मेरा बाहर निकलना एक-दम बद था। मैं किसी पास-पड़ोस की सहेली के यहा नही जा सकती थी, पत्र तो किसीको भी नही लिख सकती थी। कानपुर मे थी तो चाचीजी

का मुख कभी-कभी देखने को मिल ही जाता था, परन्तु बड़े दादा उस घटना के बाद तो मुझे साथ ही लेते गए थे। वहा तो महीने हो जाते किसी दूसरे व्यक्ति का मुह देखे हुए। मैं अन्य किसीसे बात करने को भी तरस जाती थी। अपने दिनेश तक व्यथा पहुचाने को मन आकुल हो जाता था। उसके लिखे दो शब्द पढे भी तीन-तीन बरस हो जाते थे, कोई प्रेम-पाती नही, कही से प्रियतम का कोई सन्देश नही, तीन-तीन वर्ष मैंने रात और दिन फकत दिनेश के नाम पर ही काट दिए। ऐसी प्रीति को अब क्या तोड़ पाऊगी ? दिनेश, तुम तो मेरी आत्मा हो, आत्मा के बिना यह शरीर कैसा ? दिनेश, तुम तो मेरे प्राण हो, फिर प्राणो के बिना स्पन्दन कैसा ? दिनेश, तुमने मुझे ही नही भरमाया परन्तु मेरी तो समूची चेतना, मेरा रोम-रोम तुम्हारे प्रेम के गीतो की गुजार मे भटका है···उस मधुर गुंजार का जाल क्या तोड़ा जा सकता है ? नही-नही, जैसे भी हो दिनेश मैं तुम्हें भुलाने की चेष्टा प्राणपण से करूगी। तुम्हारे रास्ते से दूर जाने मे ही मेरा और तुम्हारा कल्याण है।

ऐसे सोचते हुए मन ही मन रोते हुए न जाने कब मुझे नींद ने आ घेरा। मैं सो गई, जब उठी हू तो साझ हो गई है।

२

सोमेन्द्र ने आकर कमरे की बत्ती जलाई, मैं हड़बड़ाकर उठ गई। इस-पर सोम बोला, "सुनीता, इतना डर क्यो गई, क्या चाचीजी का स्वप्न देख रही थी ?"

इसपर मैं अपनी हंसी रोक न सकी, "सोम भैया, तुम अभी तक बच-पना करते हो। कल को वकील हो जाओगे, परन्तु तुम्हारी बचपना करने की आदत नही छूटेगी।"

"तुम भूल क्यो जाती हो कि वकील लोग मसखरे होते ही हैं।"

सुनकर मेरे उदासी-भरे मन मे भी हसी की एक लहर समा गई। धीरे से मुस्करा दिया। तभी सोम भैया बोले, "सुनीता, चाय मगवाओ, मैंने तो अभी तक चाय भी नही पी, शाम के सात बज रहे हैं।"

मैं साड़ी को ठीक करते हुए बोली, "क्यो, बडे दादा ने तो अभी तक दो बार पी ली होगी। तुम भी उनके सग पी लिए होते ?"

"आह, कैसी बच्ची बनती हो जैसे जानती नही हो कि बडे दादा और चाचीजी के पास बैठकर कोई चाय या खाना नही खा सकता। हम लोग तो क्या, डाक्टर भैया भी जो आयु मे बड़े दादा से केवल चार वर्ष ही छोटे हैं, ऐसा काम करने की हिम्मत नही कर सकते, फिर तुम्हारी और मेरी तो बिसात ही क्या जो बड़े दादा से दस वर्ष, बारह वर्ष छोटे हैं।" कहकर सोम व्यग्य से मुस्करा दिया।

मैं कुछ कहने ही जा रही थी, तभी चाचीजी ने प्रवेश किया, "सुनीता, उठ गई रानी साहब। भाइयो के राज्य मे ही घोडे बेचकर सोती हो, पति के राज्य मे सोओगी तो मैं जानूगी।"

इसका उत्तर मैंने मौन रहकर ही दिया। मैं खड़ी-खडी नीची दृष्टि किए हुए पांव के अगूठे से जमीन पर लकीरें बनाती रही। सोम भैया एक

किताब के पन्ने उलटने लगे।

"हू, तो अब तैयार हो जाओ ज़रा जल्दी से, महलपुर से लोग आ रहे हैं तुम्हारी सगाई के लिए।" कहकर चाचीजी मुह मे भरे पान को जैसे चबाती हुई आई थीं वैसे ही चबाती हुई चली गईं। सोम भैया ने मेरी ओर देखा, मैंने मौन ही रहकर सोम भैया को आखो ही आखो मे कहा, 'भैया, तुम तो जानते हो, फिर छुटकारा दिलवाओ किसी प्रकार। मुझे विवाह नही करना है।' परन्तु कोई आश्वासन न मिला। सोम भैया भी कुछ गभीरता से सोचने लगे थे। मैंने मुख नीचा कर लिया और अपने असीम दु ख के लिए मेरे नेत्रो की कोरो से दो बूद आसू टपक पडे। हे भगवान! एक ही दिन मे दो-दो आघात। अभी कुछ देर पहले दिनेश को पत्र लिखा था, उससे सम्बन्ध विच्छेद किया था, मेरी देह से तो जैसे प्राण भी लेता गया था वह पत्र। मस्तिष्क की एक-एक नस पीडा से भीगी है। अब यह दूसरा आघात। क्या दिनेश के अतिरिक्त मैं दूसरे को कभी प्रेम कर सकूगी? चाचाजी से, चाचीजी से, वडे दादा से, सबसे लाख-लाख बार मना कर दिया है—मेरे ब्याह की चिन्ता छोड़ दो, मुझे कुए मे गिरने दो, मरने दो, परन्तु फिर भी न जाने क्यो लोग समझते नहीं।

तभी सोम ने कहा, "क्या सोच रही हो सुनीता, पुरानी वात को भूल जाओ, दिनेश को एक भ्रम समझ लो और तैयार होकर गोल कमरे मे चली जाओ, नही तो चाचीजी घर-भर मे कुहराम मचा देगी।"

"तुम भी यही कहते हो सोम भैया! जो मुझे इतने निकट से देखकर भी मेरे मन को नही पहचानते हो तो मेरे भाई कैसे हो!"

"सुन्नी, मैं खूब पहचानता हू तुम्हे। परन्तु तुम हो भूल कर रही हो। उस दिनेश को लेकर अपने जीवन को बरबाद करने से क्या लाभ! उसके पत्नी है और एक लडका भी है। वह मौज कर रहा है, और तुम उसके लिए साधना करती रहो यह कौन-सी पहेली है मुझे समझा दो तुम?"

उत्तर मेरे से न बन पडा। केवल हिचकिया लेकर मैं रो दी। सोम

भैया ने मेरे सिर को प्यार से थपथपा दिया और कमरे के बाहर चला गया।

इसके जाने पर और ज़ोर-ज़ोर से मुझे रुलाई आने लगी। रह-रहकर मन मे बडी ज़ोर से पीडा की लहरे उठने लगी। सोचती, आज मा होती तो अपनी लाड़ली सुन्नी की बात न मानती क्या? मा, जिसकी धुधली-सी स्मृति मेरे मानस-पट पर है। जब-जब मेरी आत्मा को दु ख होता है, मेरे सामने मा और बाबूजी दोनो की आकृतिया उभरने लगती हैं। मा, यदि तुम जीवित रहती तो तुम्हारी सुन्नी ऐसा कठिन मार्ग पकडती ही क्यो जिसपर चलकर आज वह क्षत-विक्षत है। चाचीजी का कठोर शासन, बडे दादा का छडी से पीटना, ऐसे घुटन व दु ख-भरे वातावरण मे मा, मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए था, तुम्हारा ममता से सीजा हुआ आचल चाहिए था, परन्तु वह दिया दिनेश ने। तुम तो मा अपनी सुन्नी को छोडकर दूर चली गई, इतनी दूर कि मैं लाख-लाख उड़ानें भरू फिर भी तुम्हे छू न सकू। जो स्नेह-सहानुभूति तुमने देनी थी, वह दी दिनेश ने और छोटे-से मन मे स्थान बना लिया। मैं किसे दोष दू, मा तुम ही बोलो। तुम्हे दोष दू, दिनेश को दू या अपने को? तुम्हे कैसे दू, तुम तो कभी भी यह नही चाह सकती थी कि तुम्हारी सुन्नी का जीवन सदैव सूना-सूना रहे। दिनेश को भी कैसे दोष दू! जो-जो बर्ताव उसने मेरे साथ देखे तो उसके मन मे एक अनाथ बालिका के लिए दया का सागर उमड़ पडा। फिर दोषी तो मैं ही हू, मेरा मन, मेरा मस्तिष्क, मेरी आत्मा, तीनो ही दोषी है, जिन्होने अपनी सौर से बढकर पाव फैलाए। उसका फल भी मैं भुगतने को तैयार हू मा। बचपन मारपीट और यातनाओ मे बीत गया। शेष जीवन नमक की तरह घुलते-घुलते बीत जाएगा।

मैंने खिडकी की सलाखें पकडकर उनपर सिर टेक दिया। तभी बगले के बाहर सडक पर एक मोटर के खडे होने का शब्द सुनाई दिया। समझ गई, बड़े दादा के महलपुरवाले मित्र तथा उनकी माताजी आ गई है। न जाने किसी अज्ञात प्रेरणा से या चाचीजी के डर से, मैंने अपने कमरे से

सटे स्नानगृह मे जाकर मुह-हाथ धोया, बाल सवारे और एक सूती सफेद साड़ी पहनकर रसोईघर मे चाय की एक प्याली पीने चली गई। इस बीच महाराज ने आकर चाय के लिए भी आज नही पूछा था। जहां चाचीजी हमारे घर पधार जाती हैं वहा नौकर लोग भी सब इनकी जी हुजूरी मे इकट्ठे हो जाते है। रसोई मे जाकर देखा, महाराज गर्म-गर्म पकौडी छान रहा है। मैं बोली, "क्यो महाराज, आज रात हो गई, मुझे चाय भी नही भिजवाई ?"

"अरे बिटिया, इ माजी के मारे तो नाक मे दम है। जिस दिन बडे दादा घर मे आते हैं, इ माजी सारा दिन इधर मे पडी रहती हैं, बडे मालिक तक को ध्यान भी नही रहता। दिन-भर परेशान करती हैं, कभी चाय छानो कभी कचौरी, कभी पकौडी। हा, एक बात है, वह तुम लोगो से और खासकर बडे दादा से बहुत स्नेह करती हैं, मा का अभाव होने नही देती बिटिया।"

"हू, तो तुम चाचीजी की हुजूरी मे बिटिया को चाय देना भी भूल जाते हो।"

महाराज को थोडा छू गया मेरा इतना कहना। आख कढाई पर से उठाकर मुझे देखता हुआ बोला, "अरे काहे बिटिया रोवत-रोवत आख फूला लिया ? क्या बात है, क्या फिर कुछ माजी······"

"नही, चाचीजी ने कुछ नही कहा। मेरी तबीयत ठीक नही है, मुझे जल्दी एक प्याला चाय पिलाओ।"

"हा, हा, बिटिया तुम अपने कमरे मे चलो, मैं अभी चाय भिजवाता हू।"

मैं आगन को पार करती बरामदे मे चली आई। चाय मे अभी देर है, सोचा, बगीचे मे ही टहल लू। गलियारे मे लक्खू मिल गया, बोला, "मालिक और माजी बुलावत हैं बिटिया।"

"हा चलो।" कहकर मैं उसके साथ-साथ हो ली।

गोल कमरे का पर्दा हटाया तो उन लोगो को बैठे पाया। बडे दादा ने

मुझे अपने पास इंगित से बुला लिया। मैं उनके पास ही सोफे पर बैठ गई। सामने दीवान पर महलपुरवाले दादा के मित्र की माताजी और चाचीजी बैठी थी। इधर बाईं ओर दादा के मित्र बैठे थे। मैंने दादा के मित्र और उनकी माताजी को प्रणाम किया।

मित्र की माताजी बोली, "सुनीता बेटी, तुम्हारे बारे मे बहुत बातें सुनी थी, जो सुना था देखती हू सब ठीक ही था।"

मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से उन्हे देखा।

"कैसा सुन्दर रूप है! सुनती हू इतनी ही सुन्दर बुद्धि भी है, सितार बजाओ न आज, सुनूगी।"

मैंने सोचा, खरीदने से पहले जौहरी हीरे को उलट-पुलटकर सब देख लेता है, कही कुछ खराब तो नही, ऐसे ही यह भी अपनी समझ मे मुझे आज खरीदने आई है। घाटे मे तो इन्हें नहीं रहना चाहिए, इतनी तसल्ली यह कर लेना चाहती है।

चाचीजी बोली, "हा सुनीता, कुछ बजाकर सुनाओ न। सामने ही तो अलमारी के पास सितार पडी है।"

मन न रहते हुए भी मुझे उठना ही पडा। सितार के राग टूटे हुए तथा दुःखी मन से फूट पडे। कुछ क्षण सितार की झकार रही फिर सब कोई बोल उठा, "आज तो तुमने कमाल ही कर दिया सुनीता।" यह चाचीजी की आवाज़ थी। मैंने मुह ऊपर उठाकर देखा, बोली, "यह सब आपका ही तो सिखाया हुआ है चाचीजी, नही तो मेरे पास क्या इतनी बुद्धि थी कि मैं सितार बजाना सीख पाती।"

देखा, बिजली की चकाचौंध कर देनेवाली तेज़ रोशनी मे साफ-साफ देखा, चाचीजी मेरे व्यग्य को समझ गई है; उनका मुख क्रोध में तमतमा उठा परन्तु भीतर ही भीतर वे उसे पी गईं।

तभी महाराज चाय ले आया। साथ मे तीन-चार मिठाइया, तीन-चार नमकीन। चाचीजी ने महलपुरवालो को फसाने का जाल ठीक से बिछाया था।

चाय हाथ मे लेते हुए दादा के मित्र ने कहा, "हा, हा, चाचीजी, आपने तो सगीत मे विशारद किया है बनारस से, फिर बम्बई भी आप गई थी, भूल गया हू कुछ अब......हा......आ याद आया, वहा से सगीत लेकर आपने डिग्री ली थी। फिर आप भी आज कुछ सुनाइए न माताजी को।"

चाचीजी का चेहरा ताजा खिले गुलाब की भाति खिल उठा। वैसे भी चाचीजी की आयु अभी बावन वर्ष के लगभग ही है, और उन्हे कोई बच्चा नही हुआ इसीलिए अधिक बूढी नही लगती हैं। वे चाचाजी की दूसरी पत्नी हैं। तिसपर सुन्दर हैं और कलाकार—एक सिद्धहस्त कलाकार। विवाह से पूर्व वे बनारस के एक हाई स्कूल मे सगीत की आचार्या थी।

चाचाजी उस शहर मे डी० सी० होकर गए थे। किसी सम्मेलन मे जो भेंट हुई थी तो फिर पचास वर्ष के विधुर चाचाजी को उस भेंट ने ऐसा बाधा कि जीवन-भर का साथ हो गया। चाचीजी वधू बनकर आई थी तो केवल बाईस वर्ष की थी। सुना है पहले विधवा थी।

हा तो चाचीजी को दादा के मित्र सुरेश से अपनी तारीफ सुनकर बहुत अच्छा लगा। बोली, "आज नही फिर कभी।"

सुरेश की माताजी बोली, "ऐसा अवसर कब-कब आता है जब घर के चार प्राणी इकट्ठे होते हैं। फिर न जाने कब भेंट हो, हाथ आया हुआ अवसर कभी नही छोडना चाहिए। आज तो आपसे कुछ सुनकर ही मानूगी।"

चाचीजी के हाथ मे मैंने सितार दे दी। उन्होने बजानी आरम्भ की तो मैं चुपके-से ही वहा से निकल आई। मन मे तो रह-रहकर दिनेश का चित्र और अपने पत्र की बात घूम रही है, वहा बैठना असम्भव हो उठा। आकर गोल कमरे के सामने मेरे पिताजी का पुराना पुस्तकालय है, वहीं नीचे फर्श पर बैठकर कल का छोडा हुआ डाक्टर भैया का स्वेटर बुनने लगी।

थोड़ी देर ही अभी बैठे हुई है कि महलपुरवालो के जाने की ध्वनि सुनाई दी। दादा और चाचीजी बाहर दरवाजे तक छोडने गए है......

मन मे कुछ भी नही है फिर भी सहज उत्सुकतावश मैं भी खिडकी पर खडी होकर देखने लगी और सुना, सुरेश की मा कह रही है, "मुझे तो रिश्ता मजूर है जितेन्द्र वेटा, अब लगन निकलवाओ।"

सुनकर चाचीजी ने हाथ जोड दिए और ही-ही कर हस दी, मानो बिल्ली ने मैदान मार लिया हो। वडे दादा बोले, "जी, मैं शीघ्र ही सूचना भिजवाऊगा।"

वे लोग चले गए। बाहर दरवाजे पर और आसपास समूचे बगीचे पर अन्धकार फैला हुआ है। पोर्च मे रोशनी है परन्तु वहुत धीमी। मन मे निराशा, वातावरण उदास। तभी वड़े दादा का प्रसन्नता-भरा स्वर सुनाई दिया, "चाची, हमारी सुनीता को देखकर कोई 'न' कह भी कैसे सकता है ?"

चाचीजी को शायद मेरी प्रशसा अच्छी नही लगी, बोली, "नही, नहीं, ये लोग जानते हैं कि सुनीता के नाम के तीस हजार रुपये के कैश-सर्टिफिकेट हैं। सुनीता काली भी रहती तो आज उन्हे नापसन्द नही होती।" मैं चाचीजी की बात सुनकर अवाक् रह गई। मुझे इस रहस्य का आज ही पता चला। वड़े दादा बोले, "हा चाची, तुम ठीक कहती हो, मैं तो भूल ही गया था। सुरेश के पिता बाबूजी के निकटतम मित्रो मे से हैं, वे लोग जानते हैं कि मरने से पहले पिताजी ने सुनीता के लिए तीस हजार के कैश-सर्टिफिकेट लिए जिनकी आज पैंतालीस हजार के लगभग कीमत है। हा, एक बात और, सुनीता को यह सब मालूम नही है और बच्चो को ऐसी बात जाननी भी नही चाहिए।"

"यह तुमने ठीक कहा जितेन्द्र, सुनीता अब चौबीस वर्ष की है, वयस्क हो गई है। यदि उसे मालूम हो जाए कि उसके पास कुछ पैसा है तो वह अवश्य उस दिनेश के······"

"बस, बस, मैं समझ गया, उसकी तुम चिन्ता न करो। विवाह होने से पहले वह कभी यह रहस्य जान नही पाएगी। ऐसे जितना उसके ब्याह मे खर्च होगा उतने मे ही काम निपट जाएगा और विवाह के उपरान्त तो

उसका कोई अधिकार इस घर में रह नही जाता। फिर उस हालत में उससे रुपये लेना कठिन भी नही है। यह भी खूब रही! चाची, हो तो तुम समझदार।" कहकर बडे दादा ने जमकर एक ठहाका लगाया और चाची-जी की पीठ पर उस हसी और मज़ाक मे एक ज़ोर से धौल जमा दिया।

अब वे लोग पोर्च के निकट आ गए हैं। चाचीजी के चेहरे के सब हाव-भाव मैं देख सकती हू। उस ढलती अवस्था मे भी चाचीजी का मुह लज्जा की लाली से दमकने लगा। उन्होने अपना कन्धा बडे दादा से छुडाते हुए कहा, "छोड़ो जितेन्द्र, कोई देख लेगा तो इतने दिन के छुपे रहस्य का उद्घाटन हा जाएगा।"

मैं खिडकी पर से हट गई। तो जिस चाची को लोग आदर्श समझते हैं, जिसके गुण गाते लोग घबराते नही हैं, जिसको हमारी मा कहा जाता है, उसका असली रूप क्या यही है? मेरा सर्वांग काप गया। नही, नहीं, हे भगवान, मैंने क्या देखा है! 'रहस्य का उद्घाटन हो जाएगा'—तो क्या चाचीजी और बड़े दादा?......

नही, नही! कुल-कलकिन तो मैं हू, दिनेश से प्रेम कर, कुल के नाम को कीचड़ मे डूबो देनेवाली तो मैं हू। चाचीजी तो इस घर की वधू हैं, लक्ष्मी है, हम अनाथो को मा का स्नेह देनेवाली नि.स्वार्थ प्रेम की मूर्ति हैं। वे तो पूज्य हैं, उनके लिए ऐसा सोचना भी पाप है।

३

जव दरवाज़े पर दस्तक की आवाज़ सुनी, मेरी आख खुली, देखा, उषा अपने सुनहरे तीर बरसाती जयलक्ष्मी की भाति उदित हो रही है। वह नवपल्लव-सा कोमल आलोक आंखो को, और रात्रि-भर ठीक से नीद न आने के कारण विश्रात मस्तिष्क को सहला गया। मन के धरातल से विषाद के बादल कुछ विलीन हो गए। मैंने अपने मे कल से अधिक प्रफुल्लता का सचार पाया। उठी, साकल खोली, लक्खू बूढा माली चाय लिए खड़ा था। मैंने चाय ले ली और पूछा, "बडे दादा और सोम भैया उठ गए क्या लक्खू ?"

"नही बिटिया, सोम भैया नाही उठे, बडे दादा तो साथवाली कोठी मे गए हैं।"

कहकर लक्खू चला गया। तो आज चाचीजी अभी तक नही आई होगी, इसीलिए बड़े दादा उधर चले गए। घर के नौकर-चाकर, चाचाजी के बडे लडके राधाचरण भैया, और आसपास के सब लोग चाचीजी की बड़ी बडाई करते हैं। उन्होने हम अनाथो को मा का सा स्नेह दिया। राधाचरण भैया ने तो सम्पत्ति का बटवारा भी करवा लिया है। चाचाजी के इकलौते बेटे है वे। चाचाजी को तो अब आख से बिलकुल भी दिखाई नही देता, इसीलिए राधाचरण भैया को चाचीजी की ओर से सतर्क होना पडा। इसमे राधा भैया का अपराध कम नही है तो अधिक भी नही है। चाचीजी ने राधा भैया और उनकी बहू गार्गी भाभी के साथ कभी भी अपनत्व नही जतलाया, जितना वे बडे दादा के साथ जतलाती हैं। राधा भैया को किसीने भडका दिया—बुड्ढे का क्या पता ? पका आम है, आज गिरे कल गिरे, तुम सम्पत्ति अपने नाम करवा लो, नही तो तुम्हारी सौतेली मा उस सबको जितेन्द्र को दे देगी। लोगो का कहना है कि चाचीजी ने बडे दादा

को गोद ले लिया है ; उनके अपना कोई बेटा नही है, इसीलिए वे वड़े दादा को बहुत स्नेह करती है। परन्तु बीच की बात एक मेरे सिवाय और कोई नही जानता, क्योकि मैंने कुछ दिन पहले चाचीजी को और वडे दादा को एकसाथ देखा था। मैंने कभी अपना मुह नही खोला। खोलू भी तो किसके आगे ? मेरी कौन सुनेगा ? फिर घर की बदनामी होगी वह अलग।

एक दिन चाचाजी के घर पुराने वकीलजी आए थे और चाचाजी ने अपना वसीयतनामा लिख दिया—"जब तक सुशीला (चाचीजी) जीवित है, मेरी सम्पत्ति की एकमात्र अधिकारिणी है। उसके मरने के उपरान्त राधाचरण।" राधा भैया को मजूर नही था ऐसा वसीयतनामा। तब दूसरा कागज़ लिखा गया—चाचीजी को केवल जीवन-भर के लिए साथवाली कोठी और पाच सौ रुपया।—राधा भैया ने इस वसीयतनामे पर कोई आपत्ति नही की थी।

वड़े दादा पर चाचीजी की कृपा भी असीम है। वडे दादा घर पर हो तो चाचीजी प्रात. छ वजे की चाय वडे दादा को अपने हाथ से बनाकर देती है। तब वे यह भी भूल जाती हैं कि यह चाचाजी का पूजा का समय है। चाचाजी जब पूजा करते है, तो चाचीजी ठाकुरजी को स्नान करवाती हैं, चन्दन, अक्षत, फूल चढाती हैं, भोग लगवाती हैं। चाचाजी तो यह सब अपने से कर नही सकते क्योकि वे आखो से लाचार हैं। परन्तु जिन दिनो वड़े दादा घर पर आते हैं, चाचीजी चाचाजी से यह कहकर 'जितेन्द्र को महाराज की बनाई चाय अच्छी नही लगती, इसीलिए आप पूजा पुजारीजी से करवा लीजिएगा' चली आती हैं। न जाने चाचाजी का मन कुछ समझता है कि नही, परन्तु उन्होने कभी एक दिन भी चाचीजी को कुछ नही कहा। दिन-दिन-भर चाचीजी हमारे यहा ही रहती हैं, चाचाजी को खाना भी पुजारीजी ही खिला देते हैं। गाढी साझ पडे चाचीजी घर जाती हैं। वडे दादा के लिए यह लगाव देख-देखकर ही शायद आसपास के लोग कहते हैं—चाची हो तो ऐसी। जिस दिन से आई है, बच्चो को मा का······

गार्गी भाभी तो यहा तक कह देती हैं कभी-कभी—माताजी का तो वडे लाला पर इतना स्नेह है कि वे बड़े लाला का व्याह कर बहू के साथ हिस्सा बटाना नही चाहती।

"सुन्नी, तू जितेन्द्र का व्याह कर। बहिन चाहे वडी हो या छोटी, मां के वाद वही ससार मे मा है।"

इसका मैं क्या उत्तर दू ?

"मेरी सुनता ही कौन है भाभी ! इतने बड़े-वडे घरो के रिश्ते आते हैं, वडे दादा के मन की बात नही जानती कि वे सदैव 'न' क्यों बोल देते हैं। पहले कहा करते थे, 'अभी तो नौकरी छोटी-सी है, बीवी को कहा से खिलाऊगा ?' अव तो वह बात भी नही। एस० पी० बने भी पूरे तीन वर्ष होने को आए हैं, आयु भी सैंतीस वर्ष के लगभग होने लगी है, परन्तु वे सुनते ही नही।"

इसपर गार्गी भाभी हमेशा बोलती हैं, "मेरी मानो तो सुन्नी बीवी कुछ पूजा-पाठ करवाओ।"

पूजा-पाठ पर तो मैं भी विश्वास करती हू, परन्तु ज्योतिषी लोगो से ग्रह ठीक करने के लिए पूजा-पाठ करवाना मुझे कुछ ठीक नही जचता। फिर भी उनका मन मैंने इस बार रख दिया था, "हा भाभी, अब की मैं अवश्य कुछ जाप करवाऊगी। मेरा भी मन करता है—घर मे भाभी आए, आगन मे बच्चे खेलें। अकेले रहते-रहते मन ऊब गया है।"

सच मे कभी-कभी घर बहुत सूना लगता है। अधिकतर तो मैं बडे दादा के साथ ही रहती हू। उन्हे इतना बड़ा सरकारी बंगला मिलता है, नौकर-चाकर, पुलिस का पहरा, ऐश्वर्य के सब साधन। चाचीजी का आंतक भी वहा नही होता, परन्तु फिर भी घर काट खाने को आता है। कानपुर आती हू तो वही हाल। यहा की कोठी तो और भी बडी है। पिताजी ने अपने तीनो लडको के रहने के लिए व्यवस्था की थी, चौबीस-पचीस कमरे, बडा-सा बगीचा, परन्तु सब शांत और विजन।

बहुत-बहुत इच्छा होती है कि मेरे तीनो भाई विवाह कर लें। यह सब

कमरे, जो घर मे बन्द पडे हैं, खुल जाए। घर भाभियों की रुनझुन पायलो से गूज उठे, बच्चो की किलकारियो से गम-गम गहमे…बच्चे जो फूल से भी सुन्दर, शबनम से भी कोमल होते हैं। सामनेवालो का एक छोटा-सा लडका है। रोज आया उसे साझ-सवेरे गाड़ी मे घुमाने ले जाती है तो मैं दूर से ही देख लेती हू। मेरा बहुत मन करता है, किसी बच्चे के मखमल-से गाल सहलाने को, रेशम से बाल छूने को, किसी बच्चे की तोतली भाषा सुनने को। मेरे घर मे केवल गार्गी भाभी और राधा भैया के बच्चे हैं। वे सब बडे-बडे हैं, स्कूल-कालिज जाते हैं। मैंने जीवन मे आज तक अपनी बाहो मे पाच बरस से छोटा बालक लिया ही नही, इसीलिए मेरी यह उत्सुकता कभी-कभी बहुत तीव्र हो उठती है, जैसे आज। मैं बच्चों के बारे मे सोचती ही नही, क्योकि जानती हू कि अभी डाक्टर भैया या बड़े दादा विवाह नही करेंगे। फिर भी आज पुन कहूगी बडे दादा से।

"सुनीता!" सोम भैया की आवाज़ थी।

"आओ भैया।"

"आज अभी तक नहाई नही, तुम्हारे मदन गोपाल अभी तक सो रहे है।"

"कुछ सोचने लगी भैया, बस, सोचती ही रही, इसीमे देर हो गई। सच, कितनी बुरी बात है! सुबह के सात बजने को आए हैं और अभी तक मेरे भगवान सोए पड़े हैं।"

मैं फुर्ती से उठी और अलमारी मे से हलके आसमानी रग की सूती साडी निकाली, मैच करता हुआ ब्लाउज़ निकाला, साया स्नानगृह मे था ही। भीतर जाने को ही थी कि भैया बोला, "हू, तो सुनीता महलपुरवालो के बारे मे सोच रही थी। उन लोगो और बडे दादा के बीच तो सम्बन्ध पक्का समझो।"

मैं ठिठक गई। एक हाथ किवाड पर रखते हुए बोली, "पक्का कैसा? उसका निर्णय तो तुम जानते हो भैया, फिर पूछते क्यो हो?"

"परन्तु बडे दादा के आगे तुम्हारी चलेगी?"

"वह मैं देख लूंगी। खाली तुम बीच मे कुछ मत बोलना, मौन रह जाना, बाकी सब देख लूगी।"

"हू, तो तूफान से टक्कर लोगी।"

इसका मैंने कुछ उत्तर न दिया, स्नानगृह का किवाड़ बन्द कर लिया। सोम भैया यदि लडकी होता तो मेरे लिए कितना अच्छा होता! एक बडी बहिन का सहारा होता, स्नेह होता। अभी भी सोम भैया और मैं घर मे सबसे अधिक निकट हैं। एक तो मेरे से दो ही वर्ष वह बडा है, दूसरा समूचे बचपन के दुःख-सुख सोम भैया और मैंने इकट्ठे झेले हैं।

ओह, क्या थे वे दिन! जब तक बडे दादा नौकरी पर नही गए तब तक तो दुःख इतना बड़ा पहाड़ नही था, वह सहने लायक था, परन्तु बडे दादा का नौकरी पर जाना, मेरे और सोम के लिए कठोर यातनाओ का आरम्भ होना था। मैं कुल बारह वर्ष और सोम भैया चौदह वर्ष के थे। अपने घर मे रहते थे। खाली रात को मैं सोने के लिए चाचीजी की कोठी मे चली जाती और सोम भैया घर पर ही डाक्टर भैया, महाराज और लक्खू माली के साथ रहते। मुझे अभी भी याद है कि मैं चाचीजी के घर सोने के लिए जाना नही चाहती थी, परन्तु विवश थी। वहा मेरे कमरे मे, रात के अधेरे मे जब झीगुर बोलते थे तो मुझे बहुत डर लगा करता था। बडी भयावह आकृतिया आखो के सामने आया करती थी। दिन मे सोम भैया भूत-प्रेत की कहानी कहकर और चिढाया करते थे, वही भूत-प्रेत रात को अकेले कमरे के अधेरे मे जाकर बहुत-बहुत सताते थे।

मैंने झट से सूखा तौलिया उठाया, कपडे पहने और बाहर कमरे मे आ गई। बालो मे कघी करने के लिए शीशे के आगे आकर खडी हुई कि पुरानी बातें फिर याद आने लगी। बरसात की रातो मे जब मेघ ताल देते और दामिनी नर्तन करती, तब भय से कापते-कापते मेरा हाल सूखे पत्ते-सा हो जाता। याद आती है एक रात जब बहुत साहस कर मैं चाचीजी के पास गई थी.

'क्या है रे सुनीता?'

'चाचीजी, बहुत डर लगता है, आपके कमरे में सो जाऊं ?'

'हूँ, डर लगता है, काहे का ? चलो अपने कमरे मे जाओ। बारह बरस की होने लगी, अभी तक डर लगता है।'

मैं धीरे-धीरे चाचाजी के कमरे मे चुपचाप जाकर फर्श के कालीन पर सो गई थी। उस रात इतना डर लग रहा था, मन करता था कि चाचीजी के नरम-नरम बिछौने पर जाकर उनसे चिपट जाऊ और उनके गले मे बाहे डाले सो जाऊ। परन्तु यह कैसे सम्भव था ! चाचीजी तो मुझे खाट पर भी सोने नही देती थी फिर पलग और वह भी चाचीजी का !

इतने सम्पन्न घर मे जन्म लेकर भी बचपन मैंने फर्श पर सोकर काटा है। कभी-कभी बड़े दादा कहते थे, 'चाची, सुनीता को एक खाट दे दीजिए।' परन्तु चाचीजी सदैव इस बात को बडी शान्त और रोबीली आवाज से काट देती थी, 'जितेन्द्र, इसको अगले घर जाना है, बहुत दुलार से कभी नही रखना चाहिए लडकियो को।' यही बात उनकी मेरे जीवन के प्रत्येक अग के लिए लागू होती थी—जैसे, मैंने कालिज और स्कूल दोनो मे सदैव एक ही रग की कमीजें और सलवार पहनी हैं—ब्राउन रग के सूट और सफेद ओढनी; जब साडी पहनने लायक हो गई तो सफेद सूती किनारे-वाली धोती। कालिज मे कोई जलसा हो, पार्टी हो, मुझे किसी तरह का भी शृंगार करने की इजाज़त नही थी। कुछ लडकिया मेरे पहनावे को लेकर फबतिया भी कसा करती थी, मुझे देहाती, बुद्ध, जोगिन न जाने क्या-क्या कहकर चिढाया करती थी। जब छोटी थी तब मन मे यह प्रश्न उठा करता था कि अन्य लडकियो की भाति मैं भी रगबिरगे कपडे क्यो नही पहनती ? मुझे चाचीजी झालरवाले, लेसवाले फ्राक क्यो नही पहनाती ? कितने-कितने दिन मैं अपने हिस्से का खाना बाहर फेंक देती थी, दुःख से खाया नही जाता था। कभी गुडिया के लिए बोलती थी तो तमाचा खाकर चुप हो जाती थी। वही हाल खाने मे होता था। दूध-दही तो घर का था, चाचीजी रोक नही सकती थी, परन्तु साग हमारे लिए कभी-कभी आता था। सुबह-शाम दाल। महाराज से मैं झगडा कर उठती, मचल

उठती, तभी कहीं से चाचीजी आ जाती तो चुप होकर उनके सामने उसी दाल से खाना पड़ता। खाना हमारे घर, हमारे पैसे से, हमारा महाराज बनाता था, फिर भी हरएक बात चाचीजी की मानी जाती थी। आज सोचती हू, यदि पिताजी इतनी भारी सम्पत्ति छोड़कर न मरते तो ये चाचीजी तो हमें भूखे ही मार डालतीं।

"सुनीता बिटिया, पूजा नहीं करी हो आज ?" महाराज कह रहा था।

"धाई, तुम सामान ठीक करो।" कहकर मैं पूजा करने चली आई, और बचपन की घटनाओं का तार टूट गया।

दोपहर होते-होते आकाश मेघाच्छन्न हो गया। आषाढ आ गया है, बरसात के बरसने के दिन हैं। गर्मी के मारे सबके नाक में दम हो उठा था, इसीलिए मन काले-काले बादल देखकर एक नई प्रसन्नता से भर उठा। प्रकृति की यह अनोखी देन है। अमीर-गरीब, ऊचा-नीचा, दु खी-सुखी इसके बहते पानी से सब कोई अपनी प्यास बुझा सकता है। व्याकुल हृदय को सहला सकता है।

मैंने अपना बुनने का स्वेटर उठाया और बाहर बगीचे की घास पर आकर बैठ गई। बादलो के उमड़ आने से ठडी पवन के झोंके आने लगे हैं, इसीलिए आज इस समय कमरा बन्द कर सोने को मन नहीं हो रहा। फिर वह स्वेटर जल्द ही पूरा कर डालना है, दो महीने मे डॉक्टर भाई को कश्मीर जाना है। इस जाडे मे बहुत काम करना है, बडे दादा के पास, सोम के पास सबके सब स्वेटर पुराने हो गए हैं। मैं बैठी यही सब सोच रही हू कि सहसा मेरी आखें पीछे से किसीने आकर बन्द कर दी। दिल धक् से रह गया···दिनेश, दिनेश ही तो प्राय ऐसा किया करते थे।

"आख छोडो तो जानू कौन है।" मैंने हाथ से टटोलते हुए कहा। हाथ मे साड़ी की पकड़ आई तो एकदम मुह से निकला, "अरे कुसुम !"

मेरी आखें छोड़ दी गईं और कुसुम खिलखिलाती मेरे सामने आकर खडी हो गई।

"हू, तो कैसी हो बुआजी ?" कुसुम ने चिढ़ाते हुए पूछा।

"नटखट एक नम्बर की हो तुम । बुआजी कहोगी तो नहीं बोलेंगे ।" मैंने कहा। कुसुम मेरे राधा भैया की लडकी हैं ।

"अच्छा-अच्छा, रूठो मत, सुनीता, बोलो कैसी हो ? तुमने मेरे एक भी पत्र का उत्तर नही दिया। मा भी तुमसे नाराज है ।"

"देखो कुशी, अलग से पत्र भेजने पर प्रतिबन्ध है, चाचीजी के पत्र मे ही भेज पाती हू । उन्होने इस बीच तुम्हें बरेली पत्र भेजा ही नही, बोलो, मैं क्या करूं ।"

"ऐसे बहाने बनाने से काम नही चलेगा । प्रतिवन्ध तो पहले था । फिर दिनेश वाबू को पत्र कैसे भेजती हो ?"

मैंने बात का रुख बदलते हुए पूछा, "बी० टी० मे बहुत अच्छे अक लिए तुमने । अब नौकरी करोगी ?"

"मेरा मन तो करता है, परन्तु बाबूजी को तो तुम जानती ही हो, कभी करने नही देंगे । उन्हे तो लड़कियो का नौकरी करना भाता नही ।" कहकर कुसुम वही मेरी गोद मे सिर रखकर लेट गई । हाथ से घास का तिनका तोड़ते हुए मुझसे बोली, "जानती हो सुन्नी मैं क्यो आई हू ?"

"इसमे जानने की क्या बात है ? तुम्हारा घर है तुम आई हो ।" मैंने हसते हुए कहा । अनजाने मे ही मैंने उसके बाल सहलाने आरम्भ कर दिए हैं । बहुत दिन के उपरान्त एक सखी मिली, बहिन मिली है । अकेले रहते-रहते मेरा मन पपीहे-सा व्याकुल रहता है सदैव । किसी अन्य व्यक्ति से बात करने को आतुर। सयोग से यह अवसर आया है, मेरा अन्तर अपना सब कुछ उडेल देने को विकल है ; परन्तु नही मुझे धीरज धरना होगा । जिससे अब मेरा कुछ नाता ही नही, उसकी चर्चा भी नहीं । 'छोडा गाव, तेना क्या नाम !' इतने मे कुसुम ने कहा, "हू, यह बात नही, मुझे वडे दादा का पत्र गया था कि अट्ठाईस जून को वे वापस अपनी नौकरी पर जानेवाले हैं, छुट्टी खत्म हैं, मुझे साथ ले जाने को बुलाया है ।" सुनकर मुझे वहुत अच्छा लगा, "तो क्या सच मे तुम मेरे और वडे दादा के सग चल रही हो कल ?"

"हा," कहा कुसुम ने। मैंने उत्तर मे प्यार से उसके गाल थपथपा दिए। कुसुम साथ जा रही है, कम से कम कुछ दिन का साथ तो रहेगा। एकान्त कुछ कम होगा, अजगर की भाति विकराल एकान्त। मुझे सिहरन हो गई सोचकर कि कैसे-कैसे मैं अपना समय व्यतीत किया करती हूं बडे दादा के पास। "तब तो खूब छनेगी, खूब मज़ा आएगा।"

"हा सुन्नी, मस्ती तो रहेगी ही।" और कुसुम ने मुझे गुदगुदा दिया। मुझे ख्याल आया, "चल, भीतर चल कुछ नाश्ता कर ले।"

"यहीं मंगवाओ, क्या मस्त पुरवैया बह रही है! ऐसे मे भीतर जाने को मन नही होता।"

मैं भीतर आने के लिए उठ गई। कुसुम किसी गीत की कडी गुनगुना उठी। कितना स्वच्छद है इसका जीवन! कोई अभाव नही, कोई निराशा नही। मा है, बाबूजी हैं, भाई-बहिनें सब कुछ ही हैं। फिर मेरी तरह कोई भूल भी इसने नही की। अल्हड़ और भोली कुसुम अभी तक प्रेम के सुख-दु ख से अनभिज्ञ है। काश मैं भी इसी प्रकार अनबूझ रहती! प्रेम के सुख-दु ख से अछूती रहती!

महाराज सामने ही मिल गया। बोला, "बिटिया, चाय बनाऊं?"

"हा, चाय तो पिलाओ ही, साथ मे कुसुम आई है—कुछ नाश्ता भी लाओ।"

मैं बोल ही रही हू कि कुसुम, बडे दादा और चाचीजी भीतर आ गए। बड़े दादा बोले, "देखो महाराज, हमारे यहा आज खास मेहमान आए हैं, खूब अच्छी-सी कोई चीज़ आनन्द भण्डार से जाकर ले आओ, यह लो पाच रुपये।"

कुसुम इठलाती हुई बोली, "कही ऐसा भी कुछ करते हैं, इतने रुपये मत दीजिए।"

मुझे कुसुम का इतराना इस समय भला नही लगा। बडे दादा के सामने इस प्रकार इसे नही करना चाहिए। फिर भी मैं चुप ही रही।

चाचीजी बोली, "जितेन्द्र आओ, बाहर तो हलकी फुहार पडने लगी,

हम लोग गोल कमरे मे बैठेंगे।"

चाचीजी चली। पीछे-पीछे कुसुम और बडे दादा बडे आत्मीय ढग से आखो ही मे कुछ बात करते हुए चले गए। मैं देखती रही, मुझे कुछ अजीब-सी घुटन हुई। मैं वहा न जाकर अपने चाचाजी के पास साथ-वाली कोठी मे चली आई। चाचाजी अपने संगीत के कमरे मे बैठे पुजारी-जी से रामायण का पाठ सुन रहे थे। मैं भी जाकर उनके पास ही चुप-चाप बैठ गई। उन्हे भान हो आया, वे पदचाप पहचानकर बोले, "कौन, सुनीता बेटी!"

"हा चाचाजी।" मेरे गले से स्वर निकला। न जाने मन क्यो भर आया था। चाचाजी स्वर सुनकर चौंके। वे मुझे अपनी बेटी-सा ही मानते है। उन्हे तो कोई बेटी है भी नही सिवाय मेरे। मुझे भी उनके समीप बैठ-कर बहुत शान्ति मिला करती है। तभी चाचाजी ने कहा, "पुजारीजी, आप विश्राम करिए। मैं फिर सुनूगा रामायण।" पुजारी जी चले गए। चाचाजी ने अपना जरा से जीर्ण कापता हुआ हाथ मेरे सिर पर रखा, "क्या बात है बेटी, नि सकोच कहो। बेटी, अपने पिता के सामने छुपाना मत।" चाचाजी के हृदय मे हम चारो भाई-बहिनो के लिए असीम स्नेह व सहानु-भूति है। और उसका अश उनके स्वर मे पाकर मेरी दबी-दबी, घुटी रुलाई फूट पडी। मैं उनके चरणो पर सिर देकर रो पडी। पाच-सात क्षण ही बीते होगे कि चाचाजी अपने-आप कहने लगे, "सुनीता बेटी, धीरज रखो। मन छोटा नही करते। महलपुरवाले अच्छे आदमी हैं, खानदानी रईस हैं, कोई दु ख तुझे वहा नही होगा। बचपन की बातो को तूल नही देते बेटी! उस बात को भूल जा। बेटी पराया धन है, उसे अपने घर जाना ही होता है।"

"चाचाजी, अभी आप रुकवा दीजिए। फिर कभी, पर अभी नही, बस इतना ही कीजिए।"

इसपर चाचाजी कुछ नही बोले, मौन हो गए। थोडी देर बाद बोले, "सोचूगा सुनीता, सोचकर जितेन्द्र से कह दूगा।"

मैं जान गई, मेरी बात रह गई । चाचाजी के 'हा' कहने का यही एक ढग है ।

"चाचाजी, एक बात मैंने सुनी है, परन्तु आपसे उसकी पुष्टि कर लेना चाहती हू ।"

"पूछो ।"

"सुना है कि पिताजी ने मेरे लिए तीस हज़ार के कैश-सर्टिफिकेट खरीदे थे जिनकी कीमत आज पैंतालीस हज़ार के लगभग है ।"

इसपर चाचाजी बहुत ज़ोर से हसे, "हा, यह बात तो ठीक है सुनीता, परन्तु इसकी तुमने मुझसे पुष्टि करने की आवश्यकता ही क्यो समझी ? क्या तुम्हारे पिता ऐसा नही कर सकते थे ?"

"नही, ऐसी बात नही चाचीजी ! मुझे आपकी बात का ही विश्वास आताहै, बस इतनी ही ।"

"हा सुनीता, भैया ने लड़को के नाम कोठी और एक लाख रुपय, तुम्हारे लिए तीस हजार के सर्टिफिकेट। वे अपनी सन्तान को पालने की चिन्ता इतनी करते थे कि तुमसे कह नही सकता। तुम लोग भैया की बुढापे की सन्तान थे, इसीलिए वे बहुत कतर-ब्योत कर पैसा खर्च करते थे। अपने अनेक कष्ट उन्होने सह लिए, पुश्तैनी ज़मीन छिन गई, मुकदमा भी नहीं किया खर्च के भय से। जो रुपये तुम लोगो के लिए जोडे उसकी एक पाई भी खर्चना वे पाप समझते थे। वे हमेशा कहा करते थे, 'मेरा क्या भरोसा, आज हू कल नही रहूगा, परन्तु ये बच्चे जो मुझे भगवान ने अन्त समय मे दिए क्यो दु ख भोगें !' इसीलिए सब व्यवस्था उन्होने पहले से ही कर दी थी। हुआ भी वही, जितेन्द्र अभी उन्नीस वर्ष का भी नही था जब वे हम सबको छोडकर चले गए। मा तो तुम्हारी पहले ही चली गई थी। तुम्हे तो कुछ भी याद नही होगा,केवल छ बरस की तो तुम थी ही।" कहते-कहते उनकी अन्धी आखो मे मेरे लिए स्नेह की दो बूदें उनके गालो पर लुढक आईं। भाई की याद ने उन्हे विचलित कर दिया। अश्रु पोछकर गला साफ कर बोले, "वही अच्छे रहे बेटी, चलते-फिरते रामद्वारे चले गए।

मुझे देखो, सत्तर पार कर रहा हू, आखो मे ज्योति नही,परन्तु भगवान जाने क्यो रूठे हैं।"

"ऐसा नही बोलते चाचाजी, हम लोगो को तो आपका ही एक सहारा है।" थोडी देर ऐसी ही बाते मैं करती रही फिर बोली,"अच्छा चाचाजी, जाती हू, सामान ठीक करना है, कल सुबह तो हम लोग झासी जा रहे हैं।"

"हा बेटी, जाओ, भगवान तुम्हे सुखी रखे।"

चाचाजी को प्रणाम कर और विदा लेकर मैं घर चली आई।

४

हम लोग—बड़े दादा, कुसुम और मैं—तीनो झासी पहुंच गए हैं। कुसुम को घर बहुत पसन्द आया है, घर से भी सुन्दर उसे बगीचा लगा है। उसका अधिक से अधिक समय बगीचा मे निकलता है। बड़े दादा सदैव उसे कहते हैं—सुनीता जहा-जहा भी मेरे साथ गई है, वहा-वहां ही इसने बहुत ही सुन्दर ढग से फुलवारियो का निर्माण किया है। हरी-हरी घास का गोल लॉन, उसके चारो ओर बड़े-बड़े लाल गुलाब, जिनके पौधे खास फैजाबाद से मगवाए गए थे, काली-काली घटाओ के साये मे इतने मोहक दीखते हैं कि एक बार उदास मन भी बरबस मुस्करा देता है। वैजयन्ती की प्यारी कलिया, मोगरे की फूलों से भरी डालें, सब कुछ कुसुम दिन-दिन-भर देखते नही थकती।

समय भी आजकल बहुत शीघ्रता से निकल जाता है। दिन-भर कुसुम बनती-सवरती है, फिर इठलाती हुई, झूमती हुई, मस्त बरसात की काली घटा-सी अल्हड़, कुछ-कुछ गुनगुनाती रहती है। साझ को आजकल बड़े दादा के दो मित्रो के परिवार आते हैं। यदि वर्षा न हो तो खूब जमकर बैड-मिण्टन खेला जाता है। फिर शर्बत के दौर के बाद कभी कपूर साहब की पत्नी राधा कुछ गाकर सुना देती हैं, कभी चुटकुले ही कह देती हैं। श्रीवास्तव साहब की एक लडकी है तीन वर्ष की, तोतली जबान मे अग्रेजी की कविताए जब बोलती है तो मन न्योछावर हो जाता है। मुझे तो और भी आनन्द आता है उससे बातें करने मे। साझ के वे क्षण, जब मैं उसे अपनी गोद मे लेती हू, मेरे लिए बहुत अमूल्य होते हैं।

कपूर साहब की पत्नी तो पहले भी कभी-कभी आती थी, परन्तु श्रीवास्तव साहब और उनके परिवार से मेरा परिचय अभी नया ही हुआ है। पहले तो बड़े दादा क्लब चले जाया करते थे—लौटते थे बारह, एक बजे,

शराब पीए हुए। मैं डर जाया करती थी, खाना भी मनोहर से भिजवाकर अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर सो जाया करती थी। गर्मी हो या सर्दी, मैं कभी भी बाहर नही सोई। परन्तु कुसुम के आने से बात ही दूसरी हो गई है। बडे दादा अब क्लब एक दिन भी नही गए हैं। दोपहर के खाने के लिए भी आते हैं तो फिर चार बजे ही वापस दफ्तर जाते हैं। जाते ही पांच बजे तक चाय के लिए फिर लौट आते हैं। घर मे काफी हसी-मज़ाक से चहल-पहल रहती है। कुसुम तो दिन-भर चिड़िया की भाति फुदकती रहती है। एक बात मेरी समझ मे नही आती, वह यही कि सदैव तने हुए और खामोश रहनेवाले बडे दादा आजकल इतने मुखर और हंसोड कैसे हो गए हैं। वैसे यह सब देख-देखकर मुझे अच्छा ही लगता है। कुछ कुसुम से ईर्ष्या नही। बल्कि मैं तो चाहती हू कि कुसुम यही रहे और घर का वातावरण सदैव इसी प्रकार हसी की किलकारियो से गूजता रहे।

साझ को घर इतना अच्छा लगने लगा है कि मन मे विश्वास ही नही आता कि यही पहलेवाला घर है, जहा मेरा समय बीते नही बीतता था। प्रतिदिन कपूर साहब और श्रीवास्तव साहब के परिवार आते हैं, खूब रात तक बैठे-बैठे बातचीत होती रहती हैं। कभी-कभी मैं भी सितार बजा देती हू। कल तो भैया के एक मित्र और आए थे, मेहता साहब। उन्हे मेरा सितार बजाना बहुत अच्छा लगा था। बहुत तारीफ उन्होने नही की थी, बस इतना ही कहा था, "आप सितार बहुत अच्छा बजा लेती हैं।" उनके चेहरे के भाव बतला रहे थे कि उन्हे सितार वास्तव मे ही अच्छी लगी।

इसपर बडे दादा बोले थे, "सुनीता वायलिन भी बजा लेती है, बजाओ सुनीता, आज वायलिन बजाओ।" वायलिन बजाने को मेरा मन नही हुआ। बहुत दिन से मैंने वायलिन नही बजाई। दिनेश को वायलिन सुनना बहुत अच्छा लगता है—वायलिन देखते ही ध्यान आ जाता है उस निर्मोही का, जिसने बचपन मे ही बढती लता को सहारा देकर उसका सर्वस्व छीन लिया, उसके अन्य सब सहारे छूट गए।

बडे दादा के बार-बार कहने से मैं उनके भय के कारण उठ गई।

वायलिन लाकर बजाई तो मैंने चुपके से अपने आसू पोछ लिए। अंधेरे मे किसीने देखा तो नहीं। आखें उठाईं तो देखा, मेहता साहब देख रहे थे। मन धक्-से रह गया, कही देखा तो नही उन्होने। इस बार श्रीवास्तव साहब की पत्नी मालती ने कहा, "आप तो छुपी रुस्तम निकलीं। कहिए, मुझे सिखाया करोगी यदि मैं सीखने आऊ तो ?"

इसका उत्तर दिया कुसुम ने, "हा-हा, सुनीता के पास क्या काम है, आप शौक से आइए।"

मालतीजी बोली, "तो कल से ही आऊगी।" मैं मना करने जा ही रही थी कि बडे दादा ने इंगित से रोक दिया।

हा, बात कह रही थी मैं बड़े दादा के प्रसन्न रहने की। इसीसे मैंने एक दिन कुसुम से कहा, "बडे दादा तुम्हारी बात का मान रखते हैं कुशी, तुम एक बात कहना उनसे।"

"कहो न सुन्नी, कौन-सी बात ? पर तुम तो ऐसे कह रही हो जैसे तुम्हारी बात वे सुनते ही नही।"

"नही······ ऐसी बात नही······फिर भी देख रही हू, इधर तुम्हारे आ जाने से वे बहुत प्रसन्न हैं, घर मे खूब बोलते-चालते हैं, इसीलिए कहती हू कि·········"

बात काटते हुए कुसुम बोली, "क्या सच मे सुनीता, मेरे आने से बडे दादा बहुत प्रसन्न हैं ?"

"हा, यह तो स्पष्ट है।"

"हू, तो बात कहो, कौन-सी कहलवाना चाहती हो ?" कुसुम जूडे का काटा ठीक करती हुई बोली।

"तुम बडे दादा से विवाह के लिए बोलना। उन्हे अब विवाह कर ही लेना चाहिए। वे करेंगे, तभी तो डॉक्टर भैया भी कर पाएगे।"

"हू, तुम्ही क्यो नही कहती ?"

"मैं तो कहते-कहते हार गई, मेरी कौन सुनता है !"

मैंने देखा, कुसुम कुछ-कुछ विचार मे पड़ गई है। हो सकता है वह

बडे-बूढो की भाति यह सब बात बडे दादा से नही कह पाए। मुझे लगा जैसे मैंने ही कुछ गलती की है ऐसी बात कहकर। अपनी झेंप को मिटाने के लिए मैं वहा से उठ गई।

मैं स्नान कर, पूजा के फूल तोडने बाहर निकली कि तभी डाकिया आ गया, मुझे देखकर पत्र लेटर-बॉक्स मे न डालकर मेरे हाथ मे दे दिया। कुशी कही भीतर होगी, बडे दादा भी अभी घर मे ही है। उनके पत्र मैंने उन लोगो को भिजवा दिए। अपना पत्र खोला—डाक्टर भैया का था।

डाक्टर भैया तीन-चार दिन की छुट्टी पर झासी आ रहे हैं। मेरे लिए एक सुन्दर-सी साड़ी खरीदी है, ऐसा लिखा है उन्होने। पढ़कर भैया के प्रति स्नेह उमड़ आया। मेरे नरेन्द्र भैया, जो लखनऊ मे डॉक्टर है, मुझे बहुत मानते हैं। मानते तो बडे दादा भी बहुत हैं,परन्तु बड़े दादा का मिज़ाज गर्म है। नरेन्द्र भैया को तो क्रोध छू भी नही गया। दिन-भर छेडखानी करते हैं। कभी बोलती हू,'भैया,आप ही मेरे लिए एक भाभी ला दीजिए।' तो हंसकर कहा करते हैं, 'जब तक बडे दादा भाभी नही लाते, तब तक मैं विवाह नही करूगा। नही तो मेरी पत्नी, मेरी न रहकर द्रौपदी बन जाएगी।' उनके ऐसा कहने पर सब कोई ठहाका मारकर हस देता है।

फूल तोड रही हू, गुलाब का काटा अगुली मे गड गया, बहुत दूर तक भीतर चला गया, पीडा से हाथ सुन्न हो गया, तभी भीतर से आवाज़ आई बड़े दादा की, "सुनीता !"

काटा शीघ्रता से खीचा, साथ मे ढेर-सा खून भी निकला। उसे एक झटके से धरती पर छिटकते हुए मैं भीतर भागी। बडे दादा के हाथ मे पत्र है, शायद चाचाजी का।

"सुनीता, तुमने आने से पहले चाचाजी को कुछ कहा था महलपुर-वालो के लिए ?"

मुझसे बोल न निकला। कुसुम ने स्थिति की गम्भीरता को भाप लिया, बोली, "तो क्या हो गया चाचाजी ! सुनीता का विवाह करने आप जा रहे हैं, क्या उसका इतना अधिकार भी नही कि वह कुछ बोल दे ?"

बड़े दादा क्रोध मे हो तो किसीके भी सगे नही हैं, बोले, "तुम ही कहो, तुम्हारा ही विवाह महलपुर मे किया जा रहा है, सुनीता के स्थान पर··· क्या तुम्हे बाबूजी से अपनी पसन्द या नापसन्द कहने का अधिकार हैं ?"

मैंने सुना तो चाचाजी की बुद्धि को मैने लाख-लाख धन्यवाद दिए। लडका अच्छा है, सुनीता नही तो कुसुम सही। घर की बात घर ही मे रह गई। कुसुम मौन हो गई है। बडे दादा बोले, "सुनीता, तुमने चाचाजी से कहा, मुझसे नही कहा, क्या मैं तुम्हारी बात न रखता ? तुम विवाह करना नही चाहती हो तो लो, आज मैं सौगन्ध खाता हू, इस मामले मे मैं कभी हाथ नही डालूगा।"

बडे दादा का स्वर कुछ कोमल है, यह मैंने अनुभव किया। इतने तीव्र स्वर मे वे विरोध नही कर रहे हैं जितने की मुझे उनसे आशा थी। मैंने भीतर ही भीतर अन्तर्यामी को बार-बार नमस्कार किया।

"बडे दादा······"

"कहो, रुक क्यो गई सुनीता।"

"मै आजन्म इसी घर मे बनी रहना चाहती हू, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है। यही बात मैंने चाचाजी से कही थी, शब्द दूसरे थे···आप··· आप नाराज़ तो नही हैं न ?"

बडे दादा दो क्षण तक मौन रहकर मेरी ओर देखते रहे। फिर धीरे-धीरे बोले, "नही, मैं नाराज़ नही हूं सुनीता। छोटी-सी बात है, यदि तुम विवाह करना नही चाहती तो मैं बाध्य नही करूगा।"

मुझे कुछ ढाढस बधा। मैंने देखा, इस बीच कुसुम उठकर जा चुकी है। मेरे हाथ मे डॉक्टर भैया का पत्र है, वह मैंने बडे दादा को देते हुए कहा, "पूजा को देरी हो रही है बडे दादा, मैं जाऊं क्या ?"

उन्होंने पत्र हाथ से लेते हुए कहा, "हा, हा, जाओ, यह पूजा फिर नित्य नियमित रूप से करने लगी हो। मा की आत्मा बडी प्रसन्न होती होगी कि उसके ठाकुरजी उसकी बेटी के हाथ सुरक्षित हैं।"

मैं मुस्करा दी। क्या कहती कि मेरा निराशा से छिन्न-भिन्न मन

गोपाल की मोहिनी मूर्ति मे अपना खोया हुआ दिनेश ढूढ़ने का प्रयत्न करता है !

पूजा मे मेरा ध्यान आज फिर नही लग रहा । वार-वार गोपाल से यही पूछता है मन, 'क्या मेरे जीवन मे मधुमास फिर कभी नही आएगा मदन गोपाल ? क्या दिनेश सच मे ही मुझे भूलने की चेष्टा कर रहा है ? हे घट-घट के वासी, कुछ तुम ही कहो, दिनेश ने तो कोई सन्देश किसीके हाथ नही भेजा ।' परन्तु घट-घटवासी गोपाल की मूर्ति तो मौन रहकर मुस्कराए ही जा रही है निरन्तर,कुछ बोलती ही नही । भावनाओ का आवेग सम्हाला नही गया । मैंने चरणो मे माथा टेक दिया—आसुओ ने अर्घ्य चढाया—पता नही कितना समय बीत गया इसी प्रकार जब कुसुम ने भीतर प्रवेश किया । बोली, "उठो सुनीता, कब तक भगवान को मनाती रहोगी ?"

मुझे होश आया, झट से आसू पोछकर मैंने मुह ऊपर किया । कुशी ने आसू देख लिए, बोली, "क्या दिनेश की याद आ रही है सुनीता ? सच-सच कहो, जिसके लिए तुमने आजीवन कुआरे रहने की शपथ ले ली है, क्या उसको पत्र भी तुम नही लिखती हो ?"

"कैसी बात करती हो कुशी ! पत्र लिखना और उससे मिलना तो आज से चार वर्ष से बन्द है । वडे दादा की मनाही है ।"

"छिपे हुए भी नही ?"

"इसका उत्तर मैं पीछे दूगी । पहले तुम कहो—क्या किसीसे तुमने कभी प्रेम किया है ?"

"और यदि कहू कि हा, तो ?"

मैं पल-भर देखती रह गई कुशी को । इस अल्हड रूप के नीचे एक दूसरा रूप भी है । "किसको किया है ? क्या तुम्हारा-उसका मिलना सभव है ? राधा भैया मान जाएगे ?"

"नही ।" स्थिर स्वर मे उत्तर दिया कुशी ने ।

मैं घबराकर वोली, "तो फिर, फिर तुम क्या करोगी कुशी ? क्या मेरी ही भाति तुमने भी जीवन नष्ट कर लिया ?"

"मैं तुम्हारी तरह भावुक नही हू सुनीता, और न ही मैं अपनी आत्मा को तिल-तिल कर जला पाऊगी।" कहा कुशी ने।

"तो फिर तुम नही जानती कुशी प्रेम का क्या अर्थ है, प्रेम की परिभाषा क्या है।" मैं बरबस बोल उठी।

"मैं बहुत अच्छी प्रकार जानती हू सुनीता। तुम हा कहो, दिनेश का प्रेम क्या धोखा नही था, प्रपच नही था? एक पत्नी के रहते हुए एक चौदह बरस की भोली लडकी पर डोरे डालना क्या सगत है?"

"मैं उनकी बात नही जानती कुशी अपनी बात जानती हू। मेरा प्रेम स्थायी, चिरस्थायी है। इसमे कोई स्वार्थ की भावना नही। मैं बदले मे प्रतिदान भी नही चाहती, बस भगवान से उसकी मगल-कामना चाहती हू।"

"यही पर तुम अपने को छलती हो सुनीता। अपनी आत्मा के साथ अन्याय करती हो। जिसे तुम प्रेम कहती हो, मैं उसे तुम्हारी भावनाओ का उद्वेग कहती हू। तुम उसके स्नेह, सहानुभूति और सद्भावना को भुला नही पा रही हो, क्योकि तुम्हे यह सब उससे मिला उस समय जब तुम्हे स्नेह के बदले तिरस्कार, सहानुभूति के बदले उपेक्षा, और सद्भावना के बदले मिला करती थी फटकार। अपनी भावना को तुम कृतज्ञता कह सकती हो, प्रेम नही। तुम अपने को धोखा दे रही हो, अपनी आत्मा के साथ छल कर रही हो।"

"अच्छा, अच्छा, रहने दो अपना उपदेश। तुम अपनी कहो—अब चाचाजी तुम्हारा विवाह महलपुर मे कर रहे हैं—क्या तुम चुप रहोगी?" मैंने पूछा।

"हा।"

"यानी कि तुम्हे यह सम्बन्ध पसन्द है?"

"हा।"

मैं कुशी का उत्तर सुनकर अवाक् रह गई।

"तो जिससे प्रेम करती हो, उसका क्या होगा?" मैंने फिर पूछा।

"वह भी कही अपना विवाह रचा ही लेगा, जब उसे आवश्यकता

होगी।" कुशी ने उत्तर दिया। मेरे से नही रहा गया। मैंने कह ही दिया, "कुशी, तुम ठीक से खोलकर कहो, यह कौन-सी कहानी तुम पहेली बनाकर कह रही हो ?"

"तो अच्छा सुनो।" कहकर कुशी मुझे पूजा पर से पकडकर अपने कमरे मे ले आई।

कुसुम कहने लगी, "तुम्हे याद होगा, पिछले वर्ष इन्ही दिनो जब मैं लखनऊ के कालिज मे गई थी, बी० टी० करने के लिए, तो तुम्हारे बडे दादा भी वहा दो महीने के लिए किसी खास केस के सिलसिले मे लखनऊ मे ही थे।"

"हां।"

"एक दिन साझ के छ: बजे होगे, चाचाजी आए और छात्रावास की सुपरिण्टेण्डेण्ट से आज्ञा लेकर मुझे सिनेमा ले गए। 'सुजाता' चल रहा था। हम दोनो 'बॉक्स' मे जाकर बैठ गए। मुझे तो मन मे बहुत सकोच हो रहा था, क्योकि चाचाजी का रोब तो घर मे ऐसा ही है कि इनसे सब कोई भय खाता है। तिसपर मैं अकेली थी। परन्तु चाचाजी बहुत प्रसन्न दीख रहे थे। मध्यान्तर होने से पूर्व ही दो बार चाय मगाकर पी चुके थे। बहुत हस-हसकर इधर-उधर के किस्से बीच-बीच मे, धीरे-धीरे सुनाने लगते। बात करते समय अपना मुह इतना निकट ले आते कि मैं लजा जाती।"

"तुम क्या कह रही हो कुशी ?" मैंने कहा।

"तुम सुने जाओ सुनीता। हा, तो मेरा मन सिनेमा देखने मे तल्लीन था। वे क्या बातें कर रहे थे यह तो मैं बता नही सकूगी, परन्तु मुझे इतना याद है कि उनके बात करने पर मैं केवल 'हू, हा' कहती जा रही थी। इसी बीच मध्यान्तर हो गया, चाचाजी उठकर बाहर चले गए।"

"फिर ?" अनायास ही मेरे मुह से निकल गया।

कुसुम ने थोड़ा मुस्कराकर फिर आरम्भ किया, "घबराओ मत अब, जब आरम्भ किया है, तो सब बताके ही दम लूगी। हू, तो खेल प्रारम्भ हुआ, चाचाजी पुन आकर बैठ गए।

"मुझे 'सुजाता' देखने में इतना अच्छा लग रहा था कि पूर्णतया कहानी के वहाव के साथ-साथ मैं भी वहे जा रही थी। न जाने कब और किस समय चाचाजी ने कुर्सी पर रखे मेरे हाथ के ऊपर अपना हाथ रख दिया था। जब मुझे भान हुआ, तो कुछ समझ न पाई कि यह ऐसा चाचाजी ने क्यो किया। बहुत असमजस मे पडी, हाथ हटाऊ कि नही। हो सकता है चाचाजी ने भी ध्यान न दिया हो, अनायास ही वहा पर आ गया हो। जो कुछ भी हो—मैंने वह अपना हाथ उनके हाथ के नीचे से उठाया नही।"

"हू, तुम कहे जाओ कुशी, रुको नही।" मैंने सास ठीक से लेते हुए कहा।

"फिर चाचाजी ने मेरे हाथ को धीरे-धीरे दबाना आरम्भ किया। सुनीता, तव मैंने अपना हाथ खीच लिया और मुझे कुछ-कुछ बुरा भी लगा। मैं अपनी सीट मे ही कुछ सिकुडकर एक ओर हो गई। खेल खत्म हुआ, मैंने छात्रावास लौटने को कहा। चाचाजी बोले, 'चलो, आज मेरे होटल मे खाना खाकर जाना, अभी तुम्हे वोर्डिंग मे खाना नही मिलेगा।' मुझे खाने की इच्छा नही रह गई थी, फिर भी चाचाजी ने कुछ भी मेरी न सुनी और मुझे होटल के अपने कमरे मे लाकर कुर्सी पर विठा दिया।"

"फिर······?"

"तव ! तव खाना आया, मैंने तो दो-तीन कौर ही खाए परन्तु चाचाजी ने खूव डटकर खाया। खाने के बाद चाचाजी ने अपना सिगार सुलगा लिया और वेसिर-पैर की हाकते रहे। आज याद आता है कि मैं कितनी भारी जाल मे फसाई जा रही थी। परन्तु तव तो ऐसा कुछ अनुभव नही हुआ मुझे। हो भी कैसे सकता था सुनीता। अपने ही चाचा के बारे मे कोई कैसे ऐसे विचार सकता है। परन्तु होनी को टालनेवाला तो राम भी उत्पन्न नही हुआ इस ससार मे।

"वात करते मुझे नीद आने लगी। चाचाजी बोले, 'कुसुम, तुम मेरे पलग पर सो जाओ, मैं साथ का कमरा खुलवाए लेता हू।' मैं नीद में थी या नशे मे, नही जानती, पलग पर जो लुढकी तो इतना भी ध्यान

नही रहा कि किवाड भीतर से लगा लू।

" कोई प्रात चार बजे के लगभग मेरी नीद टूटी तो देखती हू, चाचाजी मेरी बगल मे, मेरे ही पलग पर सोए हुए है। मेरे सामने सब बात खुल गई। रात सोने से पहले मुझे चाचाजी ने एक गोली खिलाई थी यह कहकर कि इस गोली से खाना अच्छी तरह पच जाता है।"

"तो इसका यह मतलब कि······"

मेरी बात कुशी ने बीच मे ही काट दी, बोली, "हा इसका यही प्रयोजन निकला कि वह गोली चाचाजी ने जान-बूझकर खिलाई थी, ताकि मैं प्रगाढ निद्रा मे मग्न हो जाऊ। उन्हे मेरा सब नष्ट करने मे आसानी हो जाए। तुम नही जानती सुनीता, एक बार ऐसा करके उन्होने मुझे सदैव के लिए वश मे कर लिया था।"

"कैसे ?" मैंने पूछा।

तुम तो सच मे कुछ भी नही समझती, ऐसी बच्ची बन रही हो। एक बार ऐसा हो जाने पर मैं उनके चगुल मे तो आ ही गई। यदि आगे न करती तो बाबूजी से जो मन मे आता जाकर कह देते। वे तो पुरुष हैं, उनका क्या विगडा था! बिगडा तो मेरा था, मैं जो स्त्री हू।"

"मुझे विश्वास नही आता कुशी···बडे दादा अपने ही घर मे ऐसा कैसे कर पाए···कही कुछ गडबड है।"

मेरी बात सुनकर कुसुम धीरे से उठी। अपना बक्स खोलकर उसने एक हरे रग के रूमाल मे बधा एक पुलिन्दा निकाला। वही पुलिन्दा मेरे सामने पटकती हुई वह बोली, "लो सुनीता, इसे खोलकर देख लो, कहा गडबड है वह सब तुम जान जाओगी।"

मैंने कापते हाथो से पुलिन्दा खोला—उसमे बडे दादा के लिखे पत्र थे कुशी के नाम। मैं एक भी समूचा पत्र पढ न सकी। पत्र मैंने वापस लौटा दिए। कुशी ने पुलिंदा उठाया और फिर बक्से मे डाल लिया। मैं सिर नीचा किए बैठी रही। दुःख, घृणा और वितृष्णा से मेरा मन भारी हो गया है।

तभी कुशी ने मेरा ध्यान भग किया, "और सबसे हास्यास्पद बात तो यह है कि मेरा सर्वस्व लूटनेवाला ही मेरा प्रेमी बन गया। सुनीता, यदि समाज का डर न हो तो मैं अपना विवाह तुम्हारे बडे दादा से ही करू।"

"छी, छी! कुसुम, ऐसी बातें मुह पर नही लाते।" मैंने उसे डाटते हुए कहा।

"हा सुनीता, तुम ठीक कहती हो—ऐसी बातें मुह पर लाने के लिए नही, वरन् चुपके-चुपके आचरण करने के लिए होती हैं।"

"रहने दो कुशी। ओह! हे भगवान, उपन्यास मे पढनेवाली घटनाए मैं अपने घर मे ही देख रही हू।"

इसपर कुशी बहुत जोर से ठहाका मारकर हसी। उसके लिए ये बातें पुरानी पड़ चुकी हैं। उसके ऊपर इन बातो का कैसे प्रभाव हो सकता है जबकि उसका मन चिकने घडे की भाति हो गया है। बोली, "तुम क्या देखती हो? कुछ नही। तुम कुछ भी देख सकने की शक्ति रखती तो तुम्हारे दादा खुले आम, घर मे ही, तुम्हारी नाक के नीचे ही, घर की धोबिन के साथ छेडखानी नही करते।" अब की बार तो मैं जड हो गई।

"यह तुम क्या नई-नई बातें कह रही हो?" मैंने कुसुम से कहा।

"नई बातें नही, पुरानी कहो। मैंने आते ही ताड लिया। असल में एक बलि का बकरा दूसरे बलि के बकरे को देखते ही पहचान लेता है।" कहते-कहते कुशी गम्भीर हो गई।

"धोबिन कैसे बलि का बकरा हुई? अरे, ये सब छोटी जाति की औरतें थोडे-थोड़े पैसो के लिए ऐसे धन्धे करती फिरती हैं।" मैंने कुसुम को अपनी ओर से कुछ आश्वासन-सा दिया। बडे दादा का पक्ष लिया।

"हा, वह तो मैं मानती हू। परन्तु किसीकी मजबूरी को लेकर ही तो। नही तो ससार मे बहुत कम स्त्रिया ऐसी हैं जो स्वेच्छा से व्यभिचार करती हैं।"

इसपर मैं मौन हो गई। मैं जानती हूं, चाचीजी ने बहुत छोटी आयु मे ही बडे दादा को बुरे मार्ग पर डाल दिया था। चाचाजी बूढे थे, बड़े

दादा जब तेईस-चौबीस के हुए तो इसके पहले ही चाचीजी के काबू मे आ चुके थे। आज बड़े दादा का यह हाल हो गया है। चाचीजी बूढी होने को आईं तो उनके स्थान पर कुसुम आई, धोबिन आई। न जाने और कितनी आई होगी। हे भगवान, इस शोषण से निकालो मेरे दादा को।

मैंने मन ही मन प्रण कर लिया—जैसे भी हो, इस बुराई से बडे दादा को बचाऊगी।

५

कोई आधी रात से ज्यादा का समय होगा, मुझे नीद मे ही ठड-सी लगी। पखा मैंने बन्द कर दिया। फिर सोने की चेष्टा की तो कुछ-कुछ गर्मी अनुभव हुई। आखे खोलकर अधेरे मे ही देखा—खिडकी तो बन्द ही है, रात सोते समय शायद उसे खोलना भूल गई थी। उठकर खिडकी खोल दी, बाहर मेह रिमझिम बरस रहा है। दो क्षण, उस नीद की खुमारी मे अलसाई पलको से पडती हुई बूदो को निहारती रही—कजरारे बादल बीच-बीच मे खूब गरज रहे है और मन की परत के नीचे की कज-रारी भावनाओ को कुरेद रहे हैं। बिजली भी रह-रहकर अपनी छटा दिखा रही है···ऐसे मे अनायास ही मुख से निकल गया है

शैल निर्झर न बना हतभाग्य,
गल नही सका जो कि हिमखड,
दौडकर मिला न जलनिधि-अक
आह वैसा ही हूँ पाषड।

'कामायनी' की ये पक्तिया मैं इस समय क्यो गुनगुना उठी हू, यह मैं स्वय नही जानती। मन मे एक तीव्र इच्छा हो रही है कि उठू और सितार पर एक ऐसा राग गाऊ, ऐसा राग गाऊ, जिसे सुनकर ये दीवारें भी रोने लगे, ये बन्द किवाड अपने-आप खुल जाए, और उनमे से चला आए दिनेश।

ओह, फिर किसका नाम मैंने ले लिया ! नही, नही, नही ! वह मेरा नही···और सच मे पूछा जाए तो वह मेरा था ही कब ? वह तो सदैव मैंने अपने अन्तर को ठगा है, अपनी आत्मा के साथ अन्याय किया है। दिनेश तो माया का था, उसीका है, उसीका रहेगा—यही सत्य है, शाश्वत सत्य।

कुसुम सच कहती है, ठीक कहती है, दिनेश की भावनाओ को सहानु-

भूति या स्नेह का नाम मैं दे सकती हू, प्रणय का नही। वह तो पुरुष की भाति अधिकार भी जमा न सका मुझपर। बडे दादा ने जब 'न' कह दी थी तो मैंने पत्र मे लिखा था—'दिनेश, तुम पक्के रहो तो ससार मे कोई मुझे तुमसे पृथक् करने की शक्ति नही है।' उत्तर मे उसने लिख-भर दिया था, 'तुम कहो तो मै सिवल मैरिज करने का प्रवन्ध करू ?'

वस, इतना ही तो। उसके बाद आज सात वर्ष व्यतीत हो गए—कोई प्रवन्ध करना तो दूर, उसने अपने पत्रो मे कही-कही मुझे निराशा का सन्देश तक दे दिया था। दिनेश, तुम पुरुष होकर अपने प्रेम की गाथा मुह पर न ला सके, मैंने स्त्री होकर खुले आम कह दिया, 'मैं दिनेश की हू'। परन्तु तुमने फिर भी मुझे न अपनाया।

तुम मुझे अपनाते तो एक वार। माया ने तुम्हे वारह वर्ष मे एक वेटा दिया है, मैंने तो तुम्हे अपना जीवन ही दे डाला है, फिर भी तुम्हे पत्नी ही भाई, प्रेमिका के गले का हार तुम न वन सके दिनेश। समाज से डर गए। डरो नही दिनेश, डरो नही, मैं स्वय ही पीछे लौट आई हू। जिस फूलो-भरे पथ से मैं जीर्ण-शीर्ण हो गई हू—उसको मैंने छोड़ दिया है। आज के बाद मैं तुम्हारा नाम भी नही लूगी, नही लूगी दिनेश तुम विश्वास करो।

अनायास ही मेरे हाथ गीली आखो को पोछकर वत्ती जलाने जा ही रहे थे कि साथवाले वडे दादा के कमरे से धीरे-धीरे वाते करने की भनक मुझे हुई। समझ गई कोई दूसरा भी वहा उपस्थित है।

मेरा शरीर घृणा से सिहर उठा।

दिनेश बडे दादा से चरित्र मे कितना ऊचा है, यह मैं अब ही जान पाई हू। पिछले दस वरसो के सम्बन्ध मे केवल मेरे हाथ पर चुम्वन अकित करने के अतिरिक्त अन्य कुछ दूसरा उसमे और मेरे बीच नही हुआ। दिनेश, यदि तुम भी बडे दादा जैसे रहते, तो आज मैं कहा ठौर पाती···भगवान् भी मेरा चढाया हुआ प्रसाद ग्रहण न करते। इसके लिए मैं तुम्हारी आजन्म आभारी रहूगी दिनेश।

मैं चुपके से लेट गई। बाहर बूदें जोर से पडने लगी हैं। खिडकी मे से खूब भीगी-भीगी पवन आ रही है—मैं सोने की चेष्टा कर रही हू, परन्तु मस्तिष्क है कि बार-बार कही-कही पहुच जाता है···उहू, अब और अधिक नही सोचूगी।

मैंने करवट ले ली।

कठिनता से दो घण्टे ही सोई होऊगी कि रामभक्त ने दरवाजा खट-खटाना आरम्भ कर दिया, "बिटिया उठो, चाय ले लो।"

मैं उठी, देखा आज मनोहर के बदले स्वय रामभक्त खड़ा है। "क्यो, आज मनोहर साहब कहा रह गए?"

"बिटिया, उ बिमार पड गईल हा। रात से बुखार लागत बा, उनकर।"

"हैं, रात को अच्छा-भला था।"

"हा बिटिया, पर अभी उनकर देह तवे जैसी जल रहल बा।" इतना कहकर रामभक्त चला गया। आज उसे अकेले सब देखना है इसलिए कुछ घबराया हुआ भी दिखाई दे रहा है।

मैंने चाय खत्म की और मनोहर को देखने, घर के पिछवाडे, उसके कमरे की ओर बढी। पानी अभी भी पड रहा है। मनोहर बाहर-तेरह बरस का लडका है। हमारे यहा झाड-पोछ का काम करता है। थोडी-सी भी हवा मे ठडक हो, वह तुरन्त बीमार पड जाता है। शरीर उसका देखने मे इतना दुर्बल नही है जितना बुनियाद मे। दरिद्रता ही, साधारण-तया माता-पिता को बाध्य करती है कि वे अपने बच्चो को दोनो समय खाना भी नही दे पाते और छोटी-सी आयु मे ही वे निकल पडते है घर से रोटी की खोज मे।

मनोहर तक मैं पहुची तो उसे लेटे हुए पाया। मैंने धीरे से पुकारा, "मनोहर, मनोहर!"

मनोहर ने आखें खोल दी। मैंने माथा छूआ, बुखार बहुत ज्यादा नही तो कम भी मुझे नही लगा। तभी वह बोला, "दीदी!"

"कैसी तबीयत है तुम्हारी ?"

"जाडा लग रहा दीदी ।"

"कम्बल ठीक से ओढ लो मनोहर ।"

"कम्बल तो मैंने नीचे से ओढ रखा है दीदी, परन्तु जाडा फिर भी जाता ही नही ।"

"मैं तुम्हारे लिए गर्म चाय भिजवाती हूं, रामभक्त से कहती हू वह अपना कम्बल भी तुम्हे ओढा जाता है ।" मनोहर कुछ न बोला, उसने फिर आखे बन्द कर ली । "मनोहर घबराओ नही, बडे दादा के दफ्तर जाते ही मैं डॉक्टर को फोन करूगी। फिर रामभक्त जाकर तुम्हारी दवाई ले आएगा ।"

मनोहर अभी भी कुछ नही बोला । उसकी आंखो से दो बूद आंसू ढुलक आए है। मेरा मन उन आसुओ को देखकर अतीत के मेरे अपने बचपन की कुछ घडियो से भर गया है। मुझे भी जब बचपन मे बुखार आता था, तो इसी प्रकार डॉक्टर से दवाई भी आती थी, पथ्य भी मिलता था, महाराज सब कुछ समय पर दे देता था, नही मिलता था तो वह था किसीका स्नेह । किसीका दुलार से भीगा अपनत्व । उस उतने बडे घर मे, इतने भाइयो के बीच, चाची-चाचा के बीच मुझे पूछनेवाला कोई न था। बडे दादा दूर से ही पूछकर चले जाया करते थे। चाचीजी तो उसकी भी आवश्यकता अनुभव नही करती थी, महाराज से ही पुछवा लेती थी ।

मुझे अभी भी याद है—उन क्षणो, मैं मा के लिए खूब रोया करती थी। मैंने स्कूल मे एक सहेली से सुना था कि जब वह बीमार होती है तो उसकी मा उसका सब काम अपने हाथ से करती है—उसे प्यार से थपकी दे-देकर सुलाती है। सिर मे तेल डालती है, मालिश करती है, टागें दबाती है । पानी तक भी वह अपने-आपसे उठकर देती है ।

मैं सोचा करती थी, काश मेरी भी मा होती तो मेरे बालो मे तेल डालकर मालिश करती ! दर्द से माथा फटता रहता, कोई पास न आता । सोम भैया आते तो तुरन्त भाग जाते । उनका खेल मे ध्यान रहता । वे

भी तो तव वच्चे ही थे। घर मे वडे लोग दूर-दूर रहते थे, तो सोम भैया का क्या दोष ! वच्चे वही किया करते हैं जो वडे करते हैं।

मनोहर को देखकर आज वह सव फिर याद आ गया है। मन चाहा कि सव काम छोडकर इसके पास वैठ जाऊ, इसके सिर मे तेल डालकर मालिश कर दू। 'घायल की गति घायल जाने।' मैं जान रही हू कि मनोहर को कैसा अनुभव हो रहा है, उसके अकेलेपन और सूनेपन को मेरा अन्तर वखूवी जानता है। मैंने फिर पुकारा, "मनोहर !"

उसने आखे खोली, वही भोली-भोली मासूम-सी दृष्टि से उसने मुझे फिर देखा। मैं सिहर उठी। आगे वढ मैंने उसके माथे को स्नेह से सहला दिया। वह और ज़ोर-जोर से रोने लगा।

"क्यो ? क्यो रोता है मनोहर, तू ठीक हो जाएगा। नही तो मैं तुम्हारी मा को सन्देशा भेज दूगी।"

इसपर वह और ज़ोर से रो दिया,"न, न दीदीजी, मां को सन्देशा नही भेजिएगा। उसके पास तो किराया भी नही होगा। ऐसे ही चिन्ता करेगी।" कहकर वह फिर शान्त हो गया। मैं उसके पास दो क्षण और रुकी फिर वड़े दादा के भय से चली आई। रास्ते मे रामभक्त से मनोहर के लिए चाय और कम्वल के लिए भी वोल आई। सामने वाहर के वरामदे मे, चमड़े का सूटकेस और विस्तर पड़ा दिखा। वहा तक पहुची तो देखा, सोम भैया, कुसुम और वडे दादा वैठकर वातचीत कर रहे थे।

वोली,"नमस्कार सोम भैया ! कैसे हो ? आने की सूचना भी नही दी।"

"हू, तो सुनीता ! इतना पुकारा, इतना पुकारा—कहा चली गई थी सुवह-सुवह ?"

"भगवान के कमरे मे।" चिढाते हुए वडे दादा ने कहा।

इसपर कुसुम और सोम भैया हस दिए। मैं झेंप मिटाती हुई वोली, "नही सोम भैया, हमारे यहा एक छोटा-सा नौकर है, मनोहर। रात उसे ज्वर हो आया था। अभी भी खूव तेज़ ज्वर है उसे, उसीको देखने चली गई थी।"

कुसुम बोली, "सोम चाचा, हमारी सुनीता तो साध्वी होती जाती हैं। विवाह नही करेगी,दिन-रात भक्ति करती है और फिर बीमारो की सेवा।"

मैं कुछ कहने ही वाली थी कि बडे दादा बोल उठे, "सुनीता, तुम्हे मनोहर के पास बार-बार जाने की आवश्यकता नही। रामभक्त से कह दो, दवाई ला देगा।"

मैं कहना तो कुछ और चाहती थी, पर इतना ही कहकर रह गई, "जी!" और वहा से उठ आई सोम भैया के लिए कमरा साफ करवाने के लिए।

मैंने जाकर कमरे के दरवाज़े खोले, खिड़किया खोली, झाड़ू लेकर साफ करने जा रही थी कि सोम भैया आ गए सामान लिए-लिए। मुझे झाड़ू देने के लिए तैयार देखकर बोले, "हू, तो छोटे भाई की अधिक आव-भगत करने की आवश्यकता नही सुनीता, वह तो सदैव ही तुमपर प्रसन्न है—यह झाड़ू छोडो, पीछे लगेगा।" इसपर मुझे उतने क्रोध मे भी, जो बडे दादा पर आ गया था, हसी आ गई।

"नही सोम भैया, वह सब बात नही है। मनोहर के बीमार होने से यह काम रामभक्त को करना पडेगा। वह बूढा आदमी, कितना काम करेगा! मैं अभी दो क्षण मे साफ किए देती हू।"

सोम भैया बोले, "उहू, वह सब पीछे किसी नौकरानी से करवा लेना बुलवाकर। पहले गर्म-गर्म चाय लाओ।"

"अभी लाई।" चुटकी बजाते-बजाते मैं भागी। रामभक्त ने चाय तो बनाई हुई थी। एक प्याला चाय ली और सोम भैया को जाकर दे दी।

भैया बोले, "सुनीता, तुम जानती हो मैं क्यो आया हू?"

"नही तो, तुमने बताया भी तो नही।"

भैया ने मज़ाक किया, "और तूने पूछा भी तो नही।"

मैंने कहा, "अब पूछती हू, बताओ।"

"चाचीजी की आज्ञा है कि कुसुम को लेकर दो दिन के भीतर चले आओ। उन्हे कुसुम का यहा आना अच्छा नही लगा। बडे दादा को भी

वहुत खरी-खोटी सुनाकर एक पत्र लिखा है—मैंने होशियारी से पढ लिया है।"

मैं मन ही मन मुस्कराती रही। सोम भैया वोले, "वडे दादा को कहा तो वे वोले, 'जल्दी क्या है, रहो दो-चार दिन।' परन्तु कैसे रहूगा? मेरी तो छुट्टी ही दो दिन की है, तुम समझा दो कुसुम को।"

"और कुछ?" मैं वोली।

"और, कुसुम का व्याह जल्द ही महलपुरवाले लडके के साथ हो जाएगा।"

"यह तो वहुत अच्छा समाचार सुनाया आपने।" कहकर मैं उठी जाने के लिए। भैया ने फिर पुकारा, "सुनो सुनीता, एक वात तुमसे कहनी है।"

अनुभव किया, भैया का स्वर गम्भीर है। मुह ऊपर उठाया, पूछा, "कहो।"

उन्होंने अपना मुह दूसरी ओर करते हुए कहा, "सुनीता, मैं जानता हू तुम मुझे अभी भी छोटा भाई समझकर रह जाती हो, मेरी वात को उतना तूल नही देती हो जितना वडे दादा और डॉक्टर भैया की। पर तुम्हे समझना चाहिए कि मैं अव छोटा नही हू, वकालत के अन्तिम वर्ष मे हू।"

मेरी हसी फूट पडी। भैया ने फिर मेरी ओर देखते हुए कहा, "देखो सुनीता, सुनो, मजाक नही।"

"हा-हा, कहो, कहिए।"

"मैं यह थोडे ही कह रहा हू कि तुम मुझे आदर से वुलाया करो, परन्तु मैं जो कहता हू उसपर ध्यान देना।"

"हा, कहो न।" मैंने शान्त स्वर मे कहा।

"तुम कुसुम से और अन्य सवमे यह क्यो कहती रहती हो कि तुम कभी विवाह नही करोगी? कभी सोचा है, मा की आत्मा को कितना दु ख होगा? पिताजी की आत्मा कैसी विलखेगी अपनी इकलौती वेटी को सदैव अकेले देखकर?"

"भैया, तुम वकील हो परन्तु घर मे ही वकालत मत करो।"

"छोडो सुनीता, हसी छोडो। तुम्हारा व्याह तो मै करके दम लूगा। अभी नही तो और दो वरसो मे सही। अब की बार तुम बच निकली हो, परन्तु कभी तो तुम्हे मेरा कहना रखना ही पडेगा।"

"भैया······बडे दादा तो मान गए हैं।"

"इसीलिए तो मुझे और भी क्रोध आ रहा है तुम्हारे पर। बडे दादा क्यो मान गए हैं, यह सब भी मुझे मालूम है। वे तुम्हारा पैसा हडप करने के चक्कर मे है। अब यदि कोई तुम्हारे व्याह का नाम ले, तो कुछ भी बोलने की आवश्यकता नही तुम्हे।"

मै चुप हो गई हू क्योकि भैया का स्वर वास्तव मे ऊचा तथा गर्म हो गया है। नही जानती आज सोम भैया को क्या हुआ है जो बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं—कहते हैं, बडे दादा मेरा पैसा हड़प करने के चक्कर मे है। तो इसमे बुराई क्या है, वे तो मेरे भाई ही हैं। भगवान जाने मै कभी अपने भाइयो को समझने मे समर्थ होऊगी भी कि नही।

रसोई मे आकर रामभक्त के साथ मैने नाश्ते के लिए कचौडिया तली, आलू की भुजिया बनाई। भीतर जाकर नाश्ता मेज पर रखा ही था कि बडे दादा के एक मित्र मेहता साहब भी आ गए। अरे हा, आज तो इतवार है, छुट्टी का दिन। मेहता साहब शायद पजाब नेशनल बैक के मैनेजर हैं। एक प्लेट नाश्ता उनके लिए भी परोसा और भीतर बुलाने गई।

बडे दादा उठते हुए बोले, "आओ भाई मेहता, आज अमिष नाश्ता भी कर देखो, अग्रेजी की नकल अण्डा और टोस्ट तो शायद सुनीता ने नही दिया होगा।"

मैने देखा, मेहता साहब मुस्कराकर बोले, "मैं तो सब कुछ ही पसन्द करता हू, अण्डा कोई आवश्यक नही है।"

तभी कुसुम बोली, "हमारी सुनीता बुआ तो अण्डा, मास, मछली छूती नही है, इसीलिए यदि चाचाजी चाहे तो भी खा नही सकते।"

"हू··ऐसी क्या बात है ··आज के युग मे तो सब कोई खाता है, फिर

सुनीताजी, आप क्यो नही छूती ? आपको देखकर कोई ऐसा ख्याल नहीं कर सकता।"

मैं मुस्कराकर रह गई।

बडे दादा ने उत्तर दिया, "सुनीता ने जब से मा के ठाकुरजी की देख-भाल सभाली है, तब से यह नही छूती।"

"ओह, तो पूजा भी करती हैं आप! यह तो बडी अच्छी बात कही टंडन साहब आपने। आधुनिक युवतियो का ध्यान इस ओर कम ही जाता है।" मेहता साहब बोले।

मैंने सोम भैया की ओर देखा। अभी-अभी स्नान करके आए थे, चेहरा निखरा-निखरा लग रहा है, इसीलिए उसपर जो चिन्ता की रेखाए पडी हुई हैं, वे और भी स्पष्ट हो उठी हैं। न जाने सोम भैया इतने चिन्तित और गम्भीर क्यो दिख रहे है? मेरे पैसे और मेरे लिए इतने चिन्तित क्यो हैं? तभी बडे दादा बोले, "मेहता साहब, आपके माताजी-पिताजी कहा हैं आजकल ?"

"वे लोग तो लुधियाना के पास एक गाव मे रहते हैं। जमीन की आमदनी अच्छी-खासी है, इसीलिए पिताजी ने तो कभी कोई काम नही किया।"

बडे दादा 'हू' कहकर फिर खाने लगे। कुसुम को मैंने एक कचौडी और दी, तभी मेहता साहब ने भी अपनी तश्तरी आगे बढा दी। मैं लाज से विध गई—घर आए अतिथि को पूछा नही, यह भूल कैसी हो गई मुझसे ? क्या सोचेंगे मेहता साहब, कैसी असभ्य लडकी है!

मैंने देखा, मेहता साहब खाने मे रत थे—शायद उन्होने कुछ भी न सोचा हो—वह मेरे मन का भ्रम-मात्र ही हो, तभी बडे दादा बोले, "फल मत तराशो सुन्नी, फिरिज से कुछ मिठाई निकाल लाओ। मेहता साहब को फल सुबह के नाश्ते मे अच्छे नही लगते।" मैंने हाथ का चाकू फिर से फल की तश्तरी मे रख दिया और कुछ मिठाइया फिरिज मे से निकाल लाई।

मेहता साहब बोले, "इस सबकी तो कोई आवश्यकता नही है टंडन

साहब, मैंने तो कचौडिया खूब छककर खाई है। सुनीताजी ने बहुत स्वादिष्ट बनाई थी।"

इसपर कुसुम बोली, "हा, बात तो आपने सोलह आने ठीक कही है। सुनीता बुआ इतनी अच्छी प्रकार घर की देख-रेख करती हैं, इतना अच्छा खाना बनाती है कि हमारे चाचाजी को चाची लाने की भी याद नही रही है।" इस मज़ाक पर सब कोई हस दिया। मैं नही हस पाई। मुझे कुसुम के भद्दे तथा असगत मज़ाक साधारणतया अच्छे नही लगते हैं। अब की बार तो इसने सीमा ही पार कर दी। मैंने धीमे किन्तु दृढ स्वर मे कहा, "बिना मा की लडकी को गृहस्थी के बोझ का अपने-आप ही बोध होने लगता है, इसमे मेरी कार्यकुशलता की कोई खास बात नही है। रही बडे दादा के विवाह की बात, वह तुम नही जान सकती, भाभी के लिए मेरा मन कितना व्याकुल रहता है !"

इसपर मेहता साहब बोले, "टडन साहब, ठीक ही तो कह रही हैं सुनीताजी। आपने अभी तक विवाह क्यो नही किया ?"

बडे दादा धीरे से बर्फी का टुकड़ा मुह मे रखते हुए बोले, "और यदि यही प्रश्न मैं दुहरा दू तो ?"

इसपर बडे दादा और मेहता साहब खूब ठहाका मारके हसे। मुझे भी हसी तो आ ही गई। कुसुम ने पूरा-पूरा योग दिया बड़े दादा का। बोली, "लीजिए, एक ही बीमारी के दो रोगी।"

"अब बोलिए मेहता साहब आप क्या बोलते हैं।" इसका उत्तर मेहता साहब ने कुछ नही दिया, वे खाली मुस्कराते रहे।

मैंने चाय प्यालियो मे डाली। एक-एक प्याली सबके आगे बढा दी। फिर उठकर मैं बाहर चली आई। रसोई मे आकर मैंने रामभक्त को कहा, "रामभक्त, जा तू डॉक्टर से हाल कहकर दवाई ले आना मनोहर के लिए, मैं तुम्हारा काम देखती हू। और हा, रास्ते मे से मगलू की मां को बुला लाना, झाड-पोछ कर देगी।"

"जी बिटिया !" कहता रामभक्त चला गया।

६

साफ के पाच वजे का समय होगा, रामभक्त ने मुझे आकर अभी-अभी सूचना दी है कि मनोहर की तबियत बहुत खराब है, विगड़ती ही जा रही है। मैंने विना समझे-बूझे डॉक्टर को फोन कर दिया है। डॉक्टर अभी-अभी आ ही रहा होगा। बड़े दादा का कोप कौन सहेगा ! हे भगवान मुझे साहस दो ! तभी बाहर मोटर का हार्न सुनाई दिया। डॉक्टर आ गया है। बडे दादा मोटर की आवाज़ सुनकर गोल कमरे से वाहर आ गए हैं। डॉक्टर को देखकर बोले, "आइए, आइए डॉक्टर साहब, बहुत दिन मे दर्शन हुए।" और बडे दादा उन्हे गोल कमरे की ओर ले जाने लगे। तभी डॉक्टर माथुर बोले, "अरे टडन साहब, पहले मरीज़ तो दिखाइए, फिर इधर बैठूगा।"

"मरीज़, मेरे यहा तो कोई बीमार नहीं है !"

"यह भी खूब रही। अभी-अभी आपके यहां से टेलीफोन पर मुझे बुलाया गया है।"

तभी मैं आगे बढ़कर बोली, "जी, डॉक्टर साहब, हमारे यहा का एक नौकर बीमार है, तभी आपको तकलीफ दी है।"

"चलिए, चलिए, पहले उसे देख ले'।" बडे दादा को सभ्यतावश डॉक्टर के साथ मनोहर के कमरे तक जाना ही पडा, परन्तु वे बाहर ही खडे रहे, भीतर वे न आ पाए। डॉक्टर ने मनोहर की जाच की। ज्वर तो तेज था ही, कुछ-कुछ वेहोशी भी थी उसे। कुछ क्षण उपरान्त वह बोला, "आप किसी आदमी को भेज दीजिए, मैं दवाइया उसके हाथ भेज देता हू। एक तेल होगा, उसकी मालिश रात को छाती व पीठ पर कर देने से आराम रहेगा।"

इतना कहकर उसने एक इन्जेक्शन भी दिया मनोहर को। मनोहर

बिस्तर पर उसी प्रकार अर्धचेतन-सा पड़ा रहा।

डॉक्टर के साथ मैं भी बाहर तक गई। वह बोला, "न्यूमोनिया हो गया है। बरसात का पहला पानी अच्छा नही होता, जान पडता है उसीमे भीग गया है। घबराने की बात नही, ठीक हो जाएगा।"

इसपर बडे दादा बोले, "हा डॉक्टर साहब, घबराने की तो कोई बात है ही नही, परन्तु हमारी सुनीता जरा शीघ्र ही व्याकुल हो जाती है।"

मैंने जाते हुए डॉक्टर को नमस्कार किया। मोटर सदर दरवाज़ से बाहर हो गई। बाहर पहरे पर खड़े सिपाही ने जयहिन्द की बन्दगी दी और मैंने बडे दादा की ओर मुडकर के देखा।

"तुमने डॉक्टर को क्यो बुला लिया था सुनीता ? अब इसकी फीस कौन देगा ?"

मैं चुप रहकर धरती को पाव के अगूठे से कुरेदती रही।

"बोलो सुनीता, इसका बिल तो मनोहर की तनखाह से दुगुना आएगा—बोलो, कौन देगा वह ? क्या यहा धर्मशाला खुली है या धर्मार्थ सबका इलाज होता है ?"

मैं अभी भी चुप हूं। मुझे इन सब शब्दो की पहले से ही आशा थी।

बडे दादा पुन बोले, "नरेन्द्र तो रात की गाड़ी से आ ही रहा था—वही इलाज कर लेता, इतनी जल्दी क्या थी ?" कहकर बडबड़ाते हुए बड़े दादा भीतर चले गए।

मैं धीरे-धीरे पग धरती रसोई मे चली आई। रामभक्त को दवाई लेने भेजा और तरकारी काटने बैठ गई···बडे दादा कैसे हैं ? क्या इनके भीतर हाड-मास के हृदय नामक कोई वस्तु नही ? क्या इन्हे एक छोटे-से बच्चे के लिए, जो दिन-रात इनकी सेवा मे सलग्न रहता है, कुछ भी दया नही, कुछ भी मोह नही ? आज उसके माता-पिता होते पास मे, तो क्या अपने बच्चे की दवाई वे न करते ?

घमण्डी और स्वार्थी तो बडे दादा बचपन से हैं, परन्तु इतने नीच भी हैं, यह मैं नही जानती थी। प्रत्येक रात को पचीस-तीस रुपये की शराब

उड जाती है, उसका इनके मन मे लेश-मात्र भी रज नही, परन्तु यदि एक मरता हुआ बच्चा इनके एक दिन की शराब के खर्चे बराबर पैसे से अपना जीवन फिर से लौटा पाने मे समर्थ है, तो इन्हे महान क्लेश हुआ है। 'इसके पैसे कौन देगा सुनीता ?' इसके पैसे आपको नही देने पड़ेंगे बडे दादा, इसके पैसे सुनीता ही देगी। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं बडे दादा से अपने रुपये के बारे मे बातचीत करूगी।

रामभक्त दवाई लेकर लौट आया, तो मैंने उसे मनोहर के पास ही भेज दिया है। "खाने का काम मैं स्वय कर लूगी रामभक्त, तुम मनोहर के पास बैठो।" ऐसा मैंने उसे कहा था। जाते-जाते रामभक्त बोला, "कितना दर्द है गरीबो के लिए बिटिया तुम्हारे हृदय मे! रामजी तुम्हे राजरानी बनाएगें।" आखो मे दो बूद आसुओ को पोछता हुआ वह मनोहर के पास चला गया।

पनीर चने रसेदार, और आलू का भुडता बनाकर मैंने रखा ही था कि कुसुम आ गई, "क्या कर रही हो सुनीता ?"

"खाना बना रही हू। रामभक्त अकेला है आज, इसीलिए मैंने कहा थोड़ा काम उसके साथ करवा ही दू।" कहते-कहते मैंने रायते के लिए लौकी कस करनी शुरू कर दी।

"कुछ मुझे भी तो बताओ, मैं भी करूगी।" कुसुम बोली।

"बस, तुम बडे दादा को बहलाए रखो, मनोहर पर क्रोध न कर बैठें। इससे बढ़कर और कौन-सा काम है जो तुम करोगी ?"

कुसुम इतनी गम्भीर बात सुनकर भी मुस्करा दी। "तुम बड़ी वह हो सुनीता !" कहकर वह बडे दादा के पास चली गई।

रायता मैंने बना लिया है। अब केवल पुलाव रह गया है। मन हुआ कि एक बार मनोहर को फिर से देख आऊ इस बीच, परन्तु बड़े दादा फिर से कलह कर बैठेंगे यदि जान गए तो, यही सोचकर रुक गई।

आज मुझे फिर से बहुत दिनो उपरान्त बहुत अटपटा लग रहा है—

कब तक बड़े दादा से डरती रहूंगी ? कब तक घुट-घुटकर जीती रहूंगी ? यह घुटन तो एक दिन मेरा दम ही निकाल देगी। कानपुर मे बडे दादा रहने नही देते, अपने पास रखते हैं; तो क्या जीवन-भर बडे दादा के भय से मेरी आत्मा पनप नही सकेगी ? उसमे कभी नई-नई लाल कोपलें नही फूटेंगी ?

नही, नही, ऐसे मे तो तू जीते जी ही मर जाएगी सुनीता। अब तू छोटी बच्ची नही रह गई जो सब कोई मनमानी करता चले। क्या मेरा घर में इतना भी अधिकार नही कि मैं अपने मन से डॉक्टर को बुला लू ?

सुनीता, तुम्हे अब उठना ही पडेगा, अपने पाव पर आप खडी होना ही पड़ेगा, नही तो इसी प्रकार कुचलते-कुचलते एक दिन तुम अपने मस्तिष्क का सतुलन खो बैठोगी। यही बड़े दादा तुम्हे पागलखाने के सीखचो में बन्द कर आएगे। तुम्हारी सूरत देखना भी कोई पसन्द नही करेगा। शायद बडे दादा तो ससार मे यह भी कह दें कि उनकी कोई बहिन इस ससार मे अब नही। ओह ! तब ! तब तू पागलखाने मे पडी-पडी ही मर जाएगी। तुझे अपनाने कोई नही आएगा, पगली, कोई नही आएगा !

एक भूल तूने बचपन मे की अब दूसरी भूल मत कर। बडे दादा के इस जाल को तोड फेंको, सुनीता। कही दूर चली जाओ, जहा बड़े दादा और तुम्हारी चाचीजी न हो।

कहा जाऊ ? एक दिनेश ने आशा दी थी, जो आज घोर निराशा मे परिवर्तित होकर भीतर ही भीतर क्षय के कीड़े की भाति शरीर को खोखला किए दे रही है।

कही भी जाओ, कुछ भी करो, परन्तु सुनीता अब और अधिक तुम बडे दादा के संग मत रहो।

७

कुसुम और सोम भैया के चले जाने से घर एक बार फिर सूना-सूना हो गया है। वे लोग कल ही कानपुर गए हैं—तीन दिन तो रह ही गए हैं कुसुम का टीका देने मे। जाती-जाती कुसुम अपने विवाह का निमन्त्रण भी देती गई है, बोली थी, "सुन्नी, तुम मेरे विवाह पर नही आओगी तो जीवन-भर तुम्हे क्षमा नही कर सकती।"

न जाने कैसे कुसुम ने इतने सहज ढग से अपने विवाह के विचार को ग्रहण कर लिया है, जैसे इसके पहले कुछ उसके जीवन मे था ही नही ? परन्तु उसका कहना भी तो ठीक ही है—जीवन मे वह किस आशा को लेकर जीवित रहे ? बडे दादा तो उसके चाचा हैं···समाज को यह सम्बन्ध कभी भी सहन नही होगा···उस बात को तो सोचना भी पाप है। चलो अच्छा ही हुआ, कुशी इतनी सरलता से नये वातावरण को अपना लेती है तो इसमे इस घर का कल्याण ही निहित है। एक कथा की समाप्ति है। बडे दादा तो समाप्त नही होने देना चाहते थे इस कथा को। अभी उनका मन कुसुम को भेजने के लिए तैयार नही था; परन्तु कुसुम, जोकि अपनी बात को मनवाने मे निपुण है, अपनी बात पर अडी रही। "जो सम्बन्ध सदैव के लिए रखा नही जा सकता, जिसे एक दिन टूटना ही है, फिर उसे टूटते हुए देखने मे दु ख क्यो ?" ऐसा उसने बडे दादा को कहा था। बहुत ही व्यवहारकुशल तथा नीतिनिपुण है यह कुसुम।

बडे दादा ने भी परसो रात बहुत आडम्बर के साथ एक सहभोज दिया था, कुशी की विदाई मे। नगर के सब उच्च अधिकारी-गण और प्रतिष्ठित लोग अपनी-अपनी श्रीमती के साथ पधारे थे। नगर के सबसे उत्तम भोजनगृह 'अशोका' का प्रबन्ध था। मुझे फिर भी इधर-उधर बहुत काम था।

मेहमान सब गोल कमरे मे बैठे हुए थे—मैं शर्बत के गिलास भिजवा रही थी कि तभी मनोहर अपनी सफेद धुली हुई वर्दी पहनकर मेरे पास आ खडा हुआ। मैंने उसे स्नेह से डाटते हुए कहा, "जाओ मनोहर, तुम अभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नही हो, जाकर आराम करो।" वह चला गया। बडे दादा ने मेरा इतना कहना सुन लिया था। गलियारे मे से ही धीमी आवाज़ मे फटकारते हुए बोले थे, "सुनीता, तुम ही खराब करती हो सबको घर मे। जब वह काम पर आ ही गया है तो उसे आराम करने की हिदायत देने की क्या आवश्यता है ? न जाने कब इतनी बुद्धि भगवान तुम्हे देगा !"

मैंने मुह ऊपर उठाकर देखा—बडे दादा के सग मेहता साहब भी खडे थे। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि अभी-अभी पृथ्वी फट जाएगी और मैं उसमे समा जाऊगी। घर मे सबके सामने तो बडे दादा अक्सर भर्त्सना करते है—पर क्या अब बाहरवालो के समक्ष भी मेरा अपमान ये किया करेंगे ? मेरी आखो के आसू आखो मे ही सूख गए। मन की मर्मान्तिक वेदना ने उन्हे निगल लिया।

बडे दादा और मेहता साहब भीतर चले गए। मैं मन न रहते हुए भी काम निपटाकर भीतर गई।

खाने के समय मे सब कोई खडे-खडे अपने हाथो मे अपनी-अपनी तश्तरी लेकर खा रहे थे। खानेवाले कमरे मे ट्यूब-लाइटो के प्रकाश मे आखे बार-बार चकाचौंध होती जा रही थी। बरसात के दिन हैं, इसीलिए पहले से सब प्रबन्ध कमरे मे किया गया था। सावन की दमकती पृथ्वी-सा सजा था प्रकोष्ठ, और ऊपर से हसी-खुशी की लहर मे डूबा हुआ था सारा वातावरण।

मैं अपनी तश्तरी मे रखे भोजन को खाने का भरसक प्रयत्न कर रही थी, किन्तु अपमान की ज्वाला बार-बार आकर हाथ रोक लेती थी। तभी पास से बहुत ही धीमा स्वर सुनाई दिया, "क्या आज आप खाना नहीं खाएगी ?" जैसे कोई अपराध करता पकडा जाता है, ऐसे सटपटाकर मैंने देखा, मेहता साहब मेरे निकट खडे कह रहे थे।

"नही तो, खा ही रही हूं।"

"कहां ! मैं तो कब से देख रहा हूं, आप एक कौर खाने के उपरान्त किसी विचार मे खो जाती हैं।"

मैं उन्हे इसका क्या उत्तर देती ? जो सब जानता हो उसके सामने अज्ञानता दर्शाना थोड़ा कठिन हो जाता है। वे फिर बोले, "आप अकेले मे तो ऊब जाती होगी। कुछ काम ही क्यो नही कर लेती ? मेरा अभिप्राय है कि जैसे कही सगीत ही सिखाने का काम आपको बड़ी सुगमता से मिल सकता है।"

"परन्तु बड़े दादा को पसन्द नही, मैं कही काम करने जाऊं। इसमे उनके परिवार का अपमान है।"

"आपने कभी पूछकर देखा है ?" मेहता साहब ने खाते-खाते फिर पूछा।

"वे तो मुझे बी० टी० करने की आज्ञा नही दे पाए, क्योकि तब मुझे छात्रावास मे लखनऊ रहना पडता। एकदम स्वतत्र रहकर जीविका उपार्जन करूं ऐसा तो बडे दादा कभी सोच भी नही पाएगे।"

बात पूरी भी नही हो पाई थी कि श्रीमती श्रीवास्तव आ गईं, मेहता साहब से बोली, "कहिए, आप किधर रहते हैं ? कल आपके यहा हम लोग गए तो नौकर ने बताया, आप बैंक से ही नही लौटे।"

"ओह ! हा मैं भूल गया था। श्रीवास्तव साहब को मैंने वचन दिया था कि मैं आप लोगो के साथ कल सिनेमा चलूगा। बात यह है कि आज-कल हमारे बैंक की यूनियन का बहुत-से काम का भार आ पडा है। लोगो ने मुझे मन्त्री चुन लिया है, इसीसे दफ्तर के बाद थोड़ा यूनियन का काम भी देखना होता है।"

"हा, वह तो मैं जानती हू, शायद इसीलिए आपको दिल्ली से बदल-कर झासी भेज दिया गया है।" श्रीमती श्रीवास्तव बोली।

मेहता साहब ने मुस्कराकर कहा, "जी, बैंक के कुछ लोग मुझ तुच्छ पुरुष को बहुत भारी खतरा मानते है, यह उन्ही लोगो की कृपा का फल है।"

इसपर श्रीमती श्रीवास्तव बोली, "वाह भैया वाह ! अपने को आप तो तुच्छ समझते है,परन्तु ये तो कह रहे थे कि देश-भर मे बैंकों के कर्मचारी आपके एक सकेत पर इस्तीफा लिख दे ।"

"अरे आप तो लगी बनाने । मैं तो चला अब ।" कहकर मेहता साहब वहा से चले गए थे । फिर श्रीमती श्रीवास्तव मुझसे बोली, "ये मेहता साहब बहुत ही अच्छे पुरुष हैं सुनीता । इनके विचार बहुत ऊचे हैं । कुछ-कुछ कम्युनिस्ट हैं, कई लोग तो ऐसा भी कहते है । जो भी हो, बडे उदार हृदयवाले हैं । श्रीवास्तव साहब कह रहे थे, अपने दफ्तर के प्रत्येक कर्मचारी का दुख अपना व्यक्तिगत दुख समझते हैं ।"

मैंने पूछा, "कैसे ?"

"अरे, इसका चपरासी एक दिन इन्हे बुलाने घर पर आया था, मेहता साहब को तेज़ ज्वर था । तभी मुझे वह बता गया बहुत-सी बाते । वह कह रहा था, 'ये साहब पुरुष नही देवता हैं बहूजी देवता । हर महीने, मेरे घर पर एक बार अवश्य आते हैं, किसी वस्तु का अभाव हो, कही किसीको कुछ तकलीफ हो, ये मेरे साहब सह नही पाते । तनखाह मैं दफ्तर से पाता ही हू, फिर भी बहूजी, बीस रुपये मुझे साहब देते हैं केवल इसलिए कि मैं उनके घर से प्रात आकर उनका बैग उठाकर ले जाता हू ।' " मैंने केवल एक 'हू' कह दिया । वे बोलती ही गईं, "अखिल भारतीय बैंक सघ के सेक्रेटरी हैं, इन्होने बैंको मे काम करनेवाले कर्मचारियो के लिए बहुत-से सुधार करवाए है । यही नही, पखवारे मे एक बार मिल-मज़दूरो की झोपड़ियों और अन्य निर्धन लोगो की झोपड़ियो मे अवश्य आते हैं, उनकी रुपये-पैसे से सदैव सहायता करते हैं ।"

मेरे मुह से अनायास निकल गया, "ऐसे पुरुष सच मे बहुत कम होते हैं इस ससार मे ।"

मेहता साहब के बारे मे इतना पहले नही जानती थी । परन्तु जिस दिन मैंने उन्हे पहली बार देखा था, उसी दिन से एक विचार मेरे मन में घर कर गया था—'यह एक असाधारण पुरुष है ।'

बडे दादा की सगत अच्छी है, इससे मन को एक सन्तोष-सा हुआ। कौन जाने बडे दादा का मन अपने मित्र को देखकर ही बदल जाए। खरबूजे को देखकर खरबूजा रग पकडता है…अच्छी बैठक से कुछ लाभ ही होगा, कुछ अहित की सम्भावना नही है।

मैं यह सब सोच रही हू कि बाहर से बडे दादा की मोटर की आवाज़ आई। डॉक्टर भैया को रानी लक्ष्मीबाई की समाधि दिखाने ले गए थे, अब लौट आए हैं। कुछ ही क्षण बीते होगे कि डॉक्टर भैया का स्वर सुनाई दिया, "सुनीता, कुछ खाने को दो, भूख लगी है।"

मैं स्वेटर को, जिसे मैंने अभी-अभी लोहा करके रखा था, हाथ मे लेकर बाहर चली आई।

८

साझ का समय हो गया है और आज बादल अभी नभ मे बहुत ऊंचे हैं। पुरवैया वह रही है, इसीसे शायद दोनो भाई, वडे दादा और डॉक्टर भैया, बाहर लॉन मे कुर्सियां डलवाकर बैठ गए हैं। मैं जब नाश्ते का ट्रे लेकर पहुंची तो डॉक्टर भैया बोले, "अरे, तुम क्यों तकलीफ करती हो सुन्नी, रामभक्त के हाथ भेज दिया होता।" उठकर मेरे हाथ से उन्होने ट्रे लेकर तिपाई पर रख दी।

मैंने नाश्ता वढा दिया और चाय प्यालियो मे छाननी आरम्भ कर दी। इतने मे डॉक्टर भैया बोले, "हां, याद आया दादा। वह आपका मित्र था न दिनेश, मुझे मिला था लखनऊ मे कुछ ही दिन हुए हैं···उसपर कोई रिश्वत का केस चल रहा है।"

वडे दादा बोले, "छोडो, तुम भी किसका नाम लेते हो! वह पुरुष ही ऐसा कपटी है कि वह जो न करे वही अप्रत्याशित है। और तुम उसे मित्र कहते हो मेरा। खूब मित्रता निभाई उसने मेरे साथ। नरेन्द्र, आज के बाद फिर उसका नाम नही लेना।" मैं इतने मे एक कुर्सी खीचकर बैठ चुकी हूं।···केस हो गया है दिनेश पर, वह भी रिश्वत का! नही-नहीं, दिनेश ऐसा नही कर सकता। वह कभी अन्याय नही कर सकता, नही, इस-मे अवश्य कुछ गडवड है, अवश्य कही झूठ है। तुम्हारे नाम के साथ ऐसा कलक कभी नही लग सकता। काश इस विपद की वेला मे मैं तुम्हारे पास होती! तुम्हें कुछ तो सात्वना दे पाती। इस दु ख मे, प्यार से तुम्हारा माथा तो सहला देती एक बार। ओह, दिनेश, यह कैसी पीडा है जो हृदय पर छाई जा रही है! विडम्वना यह है कि मैं किसीसे कुछ पूछ भी नहीं पाती, किसीसे कुछ कह भी नही पाती।

तभी डॉक्टर भैया की आवाज ने मेरा ध्यान भंग कर दिया, "सुनीता,

क्या सोचने लगीं। खाओ न, सब नाश्ता ज्यू का त्यू रखा है। चाय भी तो ठण्डी हो रही है।"

मुझे जैसे किसीने स्वप्नो के हिडोले से नीचे पटक दिया। रेशमी डोरे टूट गए। मैं फिर यथार्थ मे लौट आई। मेरा दिनेश से अब क्या नाता! मुझे तो उसका नाम लेना भी वर्जित है!!

"खा रही हू भैया।" धीरे से कहा मैंने। फिर स्वेटर देते हुए बोली, "लीजिए, आपका स्वेटर पूरा हो गया है।"

भैया ने स्वेटर हाथ मे ले लिया, बोले, "वाह सुनीता, क्या कमाल करती हो अपने इन हाथो से! जिस घर मे जाओगी, उसकी सात पुश्तें तर जाएगी।"

इस बात का उत्तर किसीने नही दिया। मैं बहुत साहस एकत्र कर बोली, "बडे दादा, आपसे एक बात पूछनी है।"

"पूछो!"

"मैं सगीत सिखाने की नौकरी कर लू? मेरा मन अकेले घर मे नही लगता।"

डॉक्टर भैया बोले, "इसका उपचार मैंने कर दिया है सुन्नी। बडे दादा के लिए लडकी देखने के लिए मैं कल ही जा रहा हू।"

"कहा?" उत्सुकता से मैंने पूछा।

"गुरदासपुर—पजाब।" भैया बोले। सुनकर मुझे लगा, भैया उपहास कर रहे हैं।

"क्यो, इधर कही आसपास लडकी ही नही? आपको इतनी दूर जाने की क्या आवश्यकता आ पडी?" मैंने कहा।

"यही समझ लो, हम भाइयो के लिए तो इतने दिनो से कोई मिली नही इस पूरे उत्तरप्रदेश मे, अब पजाब मे जाता हू ढूढने।" बात इस नाटकीय ढग से कही डॉक्टर भैया ने कि बडे दादा हस दिए। मैं हसी मे योग न दे पाई, क्योकि मन के किसी कोने मे बहुत अधिक व्यथा है, केवल मुस्कराकर रह गई।

बोली, "तब तो अब भाभी आ ही जाएगी। परन्तु फिर भी यदि मैं कही कोई काम..."

बडे दादा ने बात को बीच मे ही काट दिया। बोले, "ऐसी काम करने की क्या आवश्यकता आन पडी है सुनीता ?"

"बडे दादा .... बात असल मे यह है कि अब मैं बडी हो गई हू, मेरी निजी आवश्यकताए कुछ-कुछ बढ गई हैं, उनके लिए मैं आपपर भार बनना नही चाहूगी।"

दादा बोले, "तुम तो किसीपर कभी भी भारी नही हो। पिताजी इतना रुपया छोडकर गए थे कि हम सब आराम से जीवन-भर खा सकते हैं। फिर तुम्हे तो आज तक एक पैसे का कपड़ा भी किसी भाई ने अपनी कमाई से नही दिया, तुम भारी कैसे हो ?"

"यह कपडे जो मैं बचपन से पहनती आ रही हूं......"

"यह सब पिताजी के पैसे के बनते हैं। मैंने या नरेन्द्र ने तुम्हे कभी कोई उपहार भी नही दिया।"

"तो बडे दादा, माह मे एक छोटी-सी रकम मुझे आप दे दें तो मेरे ख्याल से ठीक रहेगा।"

"तुम कहना क्या चाहती हो यह मुझे अभी तक मालूम नही हुआ। परन्तु यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो प्रत्येक माह तुम्हे बीस-पचीस रुपये मिल जाया करेंगे।"

इससे अधिक बहस मैं बडे दादा से नही कर पाई। उन्हे कैसे बताती कि मेरा मन कही दूर चले जाने को कहता है, जहा आपके लगाए बन्धन न हो, चाचीजी की कठोर दृष्टि न हो। फिर भी मैं बोली, "बडे दादा, यदि आप मुझे बी० टी० करने के लिए आगरा भेज दें तो क्या है ?"

"फिर वही बात सुनीता ! अब और अधिक पढकर तुम क्या करोगी? तुम्हारी भाभिया आएगी, घर मे चहल-पहल हो जाएगी, तुम अकेली नही रहोगी इसका मैं विश्वास दिलाता हू।" इतना कहकर बडे दादा ने डॉक्टर भैया की ओर देखा। भैया बोले, "बडे दादा ठीक ही तो कह

रहे हैं। तुम अभी कालिज चली जाओगी तो घर का काम कौन देखेगा ? शादी-व्याह कोई खेल तो नही। मा का स्थान तो तुम्हारा है—उनके सब काम तुम्हे ही देखने पड़ेंगे।"

दोनो भाइयो का मत जानकर मैं भीतर चली आई। बडे दादा मेरी प्रतिज्ञा को जानते है कि अब मैं कभी दिनेश से नही मिलूगी, फिर भी मुझे पढने के लिए नही जाने दे रहे हैं। कही काम करने की अनुमति भी नही देते। तो क्या जीवन-भर बडे दादा की आज्ञा के आगे सिर झुकाना पडेगा ? जीवन-भर अपमान की ज्वाला मे झुलसते रहना पडेगा ?

भविष्य की शकाए मुझे इन दिनो बहुत अधिक व्यथित किए हुए हैं। शून्य, एकदम शून्य···कही कोई आशा की किरण दिखाई नही दे रही। पथ से जो भटकी हू तो लक्ष्य कही दिखाई ही नही पड रहा। न जाने मेरे भाग्य मे और क्या-क्या देखना बदा है। फूल-सा जीवन अब पहाड़ दीखता है।

इन सबके ऊपर आज एक नया समाचार सुना है। लाख-लाख मना करती हू परन्तु मन है कि, दिनेश, तुम्हे बार-बार स्मरण करता है। तुम इस समय और विपदा मे हो, राज-सम्मान खो चुके हो, समाज का आदर अब तुम्हारे लिए वर्जित है। इस असीम दु ख मे मैं तुम्हे दो शब्द सद्-भावना या सहानुभूति के भी तो नही कह सकती!

तन, मन, धन मेरा कुछ भी तो तुम्हारे काम नही आ सकता। कितना चाहती हू कि इस समय तुम्हे थोडा-सा रुपया भेज पाऊ, परन्तु कैसे ? बडे दादा तो बीस-पचीस रुपये के ऊपर देने से साफ मना कर गए हैं। और यदि उन्हे थोडा भी भान हो जाए कि तुम्हारे लिए मुझे रुपये चाहिए तो वे कदापि न दें। मेरा ही धन है, पर मैं तो उसे छू भी नही सकती।

दिनेश, जानती हू तुम्हे भी मेरी सुधि निरन्तर आती होगी। इतने बड़े कष्ट मे तो और भी तुम्हारा मन बिलकुल निढाल, विवश हो पुकार उठता होगा, 'सुन्नी तुम कहा हो ?' मैं इतनी दूरी पर भी उस ध्वनि की मिठास अनुभव कर रही हू। ओह दिनेश, यह विपदा कहा से आ गई ?

क्या दु.ख के समुद्र झेलने के लिए एक तुम ही हो इस ससार मे ?

इतना सोचते-सोचते मेरे पग ठाकुरजी के कक्ष की ओर बढने लगे। आज जो मन मे असीम पीडा है, वह नटवर-नागर से बिन कहे जानेवाली नही है। एक गोपाल ही तो हैं जिनके सग मैं बात कर सकती हू, जो सुन-कर मेरा उपहास नही बनाते। सितार उठाकर मैंने प्रार्थना गानी आरम्भ कर दी।

९

डॉक्टर भैया तीन दिन के उपरान्त आज शाम को अभी-अभी लड़की देखकर आ गए हैं। मजे की बात तो यह है कि जो लड़की वे बड़े दादा के लिए देखने गए थे वह तो उन्हें पसन्द नही आई, परन्तु वही पर, जिनके यहा वे ठहरे थे, उनकी लड़की से अपना सम्बन्ध पक्का कर आए हैं। आकर वडे दादा के चरण छू लिए और बोले, "आशीर्वाद दो बडे दादा, मेरी सगाई हो गई।" वडे दादा आश्चर्य से वोले, "कब ?" डॉक्टर भैया लजाते हुए बोले, "परसो गुरदासपुर मे।"

इसपर वडे दादा जोर से हस दिए, बोले, "तुम तो वडे भाई की सगाई करने गए थे और कर आए हो अपनी। वाह,वाह ! यह भी खूब रही।"

डॉक्टर भैया झेंप मिटाते हुए बोले, "बड़े दादा, वहुत ही सुन्दर है ! एकदम किसी चित्रकार की कृति की भाति।"

बड़े दादा बोले, "ठीक ही तो है नरेन्द्र, अब समय आ गया है कि इस घर मे बहुए आए। तुम किसी चित्रकार की कृति ला रहे हो, तो तुम्हारा बड़ा भाई भी किसी कवि की कल्पना चुरा ले आएगा।"

इसपर डॉक्टर भैया खुलकर हसे। बोले, "तो देरी क्यो करते हैं, दिल्लीवाली लड़की जाकर देख आए और नाता भी तय कर आएं। अब की मैं कही नही जाऊगा।"

कुछ क्षण के लिए हर्ष के आवेग मे, मैं वेसुध-सी हो गई हूं। कितना अच्छा लगेगा ! घर मे दो-दो भाभिया आएगी। मेरे इस अकेलेपन का अन्त हो जाएगा। कोई मुझे भी प्यार से पुकारेगा। सुना करती हूं कि भाभी लोग ननदो को वहुत दुलार करती हैं। फिर मेरी भाभियां तो वर्षों की प्रतीक्षा के उपरान्त आ रही हैं, मैं तो उन्हे थोडा-सा भी कष्ट नही होने दूगी। उनके मार्ग के काटे चुन-चुनकर हटा दूगी। शूलो के स्थान पर फूल

बिछा दूगी। चाचीजी की परछाईं पडने भी न दूगी। इस घर के दुख मैंने सहे हैं, मैं ही सहूगी, उनको कभी सहने न दूगी।

मेरा मन आज किसी काम मे लग ही नही रहा है। बार-बार भाभियो के कल्पित चेहरे सामने आ खडे होते हैं। तभी बडे दादा ने पुकारा, "सुनीता!"

"जी!" कहकर मैं उनके सामने जा खडी हुई।

"मेरा सामान ठीक कर दो, मैं कल दिल्ली जाऊंगा।"

"जी!"

"और अपना भी ठीक कर लो, कल तुम नरेन्द्र के साथ कानपुर चली जाना। जैसाकि तुम जानती हो, दोनो विवाह पन्द्रह दिन के भीतर ही कर डालने का विचार है। वहा जाकर चाचीजी के साथ जो तैयारी करनी हो करवा डालो।"

"किसी पण्डित से लगन निकलवा लेते तो अच्छा था बडे दादा!"

"लगन-वगन के चक्कर मे पडोगी तो मेरा मन फिर···फिर जाएगा। इससे यही अच्छा है कि जो करना हो इसी महीने के अन्दर कर डालो।"

मैं चुपचाप आकर सामान ठीक करने लगी हू। बडे दादा के आगे तो आज तक किसीकी चली नही है जो मेरी वे सुनेंगे। चलो, ब्याह करने को तो राजी हुए, यही बहुत है। अभी थोडी देर पहले डॉक्टर भैया से कह रहे थे, "अब की मेरा अटल निश्चय है ब्याह कर लेने का नरेन्द्र। कैसी भी लडकी क्यो न हो, मैं सम्बन्ध तय करके ही आऊगा।"

हम लोग कानपुर आ गए हैं। यहां पर चाचाजी की तबीयत बहुत खराब है। डॉक्टर लोगो का कहना है कि अब थोडे ही दिन के मेहमान हैं। पेट का रोग हो गया है—जो खाते है वह निकल जाता है, पानी भी हज्म नही कर सकते। फिर भी उन्होने विवाह रोकने को मना कर दिया है। कल वे मुझसे कह रहे थे, "मुझे तो अब एक दिन जाना ही है, अच्छा हो कि जाने से पहले मैं भी यह शुभ काम देखता जाऊ।"

मैं जानती हूं, चाचाजी के इस कथन मे असत्य कुछ भी नही है।

काया उनकी जरा से एकदम जीर्ण-शीर्ण हो गई है। चेहरा पीला और वाणी क्षीण हो उठी है। मुझ अनाथ का यह भी सहारा अब टूटने को है। वार-वार मन मे यही विचार आता है, 'हाय अब मेरा क्या होगा ?' चाचा-जी के रहते हुए, दु खो मे, अपमान की ज्वालाओ मे, व्यग्य की बौछारो मे भी एक सात्वना वनी रहती थी। एक ढाढस बधा रहता था। एक स्नेह-मय दिलासो की स्मृति, उस दु ख को, अपमान की ज्वाला को, उन शूल से व्यग्य-बौछारो को सहने की क्षमता प्रदान किया करती थी। अब वह भी जाने को है।

आसू हैं कि वार-वार आंखो मे आ ही जाते है। सोचती हू, भगवान से भी मेरी थोड़ी-सी खुशी देखी नही जाती। कितनी प्रतीक्षा के वाद तो यह शुभ दिन आया है कि दोनो भाई व्याह करने को राज़ी हुए हैं, तो चाचाजी ऐसी अवस्था मे पड़े है।

"बिटिया, माजी बुला रही हैं।"

काम छोडकर गोल कमरे मे पहुची तो देखा—वडे दादा, सोम भैया और चाचीजी वैठे हैं। हमारे परिवार का सुनार भी वैठा है, आभूषणो के नमूने लेकर आया है। चाचीजी के आगे मेरी क्या आवश्यकता आ गई, यह वात मुझे समझ मे नही आई। चाचीजी वोली, "वहुओ के लिए आभू-पण बनने दे रही हू। आजकल सोने का भाव वहुत वढ गया है सुनीता। घर के सेफ को खोलो और अपनी मा के आभूपण देकर नये नमूने के आभूषण बनने दे दो। नमूने मैंने पसन्द कर लिए हैं।"

मैं जाने को ही थी कि सहसा बड़े दादा बोले, "ठहरो सुनीता, रुको। फिर चाचीजी की ओर मुह करके वोले, "चाची, मैंने सोचा था, आपने सुनीता को नमूने पसन्द करने के लिए वुलाया है। घर से मा के ज़ेवर तो मैं कभी नही ले सकता। मा का जो कुछ भी इस घर मे है—ज़ेवर, कपडा, सिलाई की मशीन, फर्नीचर—वह सव सुनीता का है, यह आज मैं सवके सामने कह रहा हू।"

चाचीजी कुछ चिढ गईं। वोली, "हू, तो जैसी तुम लोगो की इच्छा।"

इतना कहकर वे चली गई। बडे दादा आज तक चाचीजी के सब अनुरोध आज्ञा समझकर मानते आए थे, आज यह विरोध उनसे सहन न हुआ।

भाभिया आ गई हैं। छोटी भाभी कामनी तो सच मे ही अतीव सुन्दरी है—स्वर्ग की अप्सरा-सी, कवि की कल्पना-सी। बडी भाभी भी बड़ी प्यारी-सी हैं। मैं तो दिन-भर कई-कई क्षण उन लोगो के चेहरे की ओर देखती रहती हूं, एकटक। तभी कामनी भाभी पूछ उठती हैं, "क्या देख रही है सुनीता ?"

"यही कि तुम अब तक कहा छिपी थी ?"

भाभी लजाकर मुह फेर लेती हैं। बडी भाभी, शोभा, आयु मे मुझसे बडी हैं। उनमे इतना बचपन नही है जितना कामनी भाभी मे। शोभा भाभी बहुत गम्भीर हैं, बहुत शान्त हैं। हसती भी है तो धीमे से, बोलती भी हैं तो धीमे से। जहा बडे दादा उग्र स्वभाव के हैं, वहा भगवान ने उन्हें शान्त करने के लिए पत्नी भी गम्भीर दी है। परन्तु मेरे मन मे कभी-कभी आशका उठती है कि शोभा भाभी इतनी नम्र है, इतनी सभ्य हैं; कही वडे दादा का अभिमान और उद्दण्ड स्वभाव इनको कुचल न दे।

चाचाजी की हालत वैसे ही है, सुधरी नही। कभी-कभी होश मे आते है। बहुओ को देखकर उनके चेहरे पर एक चमक आ गई थी, ऐसा लगता था कि कुछ दिन और हम लोगो के पास रह जाएगे। परन्तु कल रात से अचानक हालत बिगडती जा रही है। मैं रात-भर उनके पास थी, अभी स्नान-पूजा करने आई ही थी कि चाचीजी की रोने की आवाज़ कानो मे आई। मैं भागी, देखा तो सब समाप्त हो चुका है। घर मे सन्नाटा छा गया है। नीरवता तो इन घरो मे सदैव से अपना साम्राज्य फैलाए है। परन्तु आज की नीरवता, आज का सन्नाटा तो मेरी हड्डी-हड्डी कपाए दे रहा है—कुछ तो चाचाजी के बिछुड़ने के दु ख से और कुछ अन्तिम सहारा छिन जाने से भविष्य के लिए आशकाओ से।

१०

बड़े दादा की बदली दिल्ली हो गई है। किसी खास केस की खोजबीन के लिए इन्हें दिल्ली भेज दिया गया है। कल उनका पत्र भाभी के पास आया था कि मकान उन्होने ले लिया है, हमको (भाभी और मुझे) वहा शीघ्र ही पहुच जाना चाहिए। कल हम दोनो दिल्ली चली जाएगी।

इधर थोडे ही दिनो मे कितनी नई-नई घटनाए घट गई हैं। चाचाजी का स्नेहमय हाथ उठ गया है। घर मे भाभिया आ गई हैं। छोटी भाभी तो लखनऊ डॉक्टर भैया के संग चली भी गई हैं। बडी भाभी यहा हैं, तो चाचीजी उनसे दिन-रात अपनी बडाइयां करती रहती हैं। कैसे उन्होंने हम सबको छोटे से बडा किया है। उसमे साथ-साथ दिनेश का नाम भी ले लेती हैं। कल-परसो की ही बात है, गोल कमरे मे बैठी कह रही थी, "बहू, सुनीता ने तो बिरादरी मे नाक कटवाके रख दी है। कुल के नाम पर कलक है कलंक !"

भाभी बोली थी, "चाचीजी, बचपन मे भूल हो ही जाती है, अब तो सुनीता ने सौगन्ध खा ली है कि वह दिनेश से कभी नही मिलेगी।"

चाची तुनककर बोली, "हां, उसके बडे दादा का इतना कठोर अंकुश था कि तुम कहो इधर कुछ वर्षों से उसे भूल-सी गई है। परन्तु अब तुम सतर्क रहना। अभी पिछले दिनो, तुम्हारे चाचाजी की मृत्यु के ऊपर, जितेन्द्र का मित्र, मेहता, आया था। उससे बहुत घुल-मिलकर बाते हो रही थी, मैंने देखा था एक दिन।"

भाभी चुप रह गई थी। वे क्या उत्तर देती इसका। कुछ भी जानती नही हैं। मैंने सुना था पास के खाने के कमरे मे से, तो मन आया था, जाकर कह दू कि हा कर रही थी बातें, परन्तु वे ऐसी बातें नही थी जैसी आप बडे दादा के सग लुक-छिपकर करती रही हैं। उपेक्षा की वेदना सहते-सहते

कभी-कभी आवेग मे मैं अपना सन्तुलन तक खो देती हू। परन्तु इतने क्रोध मे भी मन मसोसकर रह गई, भाभी का ख्याल आ गया नही तो उस दिन तो मैं निश्चित रूप से चाचीजी के साथ मुहखोरी कर बैठती।

प्राणी जब गोप्य रूप से कोई पाप या अपराध करता है तो भीतर ही भीतर उसका मन बेचैन रहता है। तब वह ऐसे अवसर की खोज मे रहता है कि कही उसे कोई साधन मिल जाए जिससे वह अपने मन के भीतर का रोप, जो उसे अपनी आत्मा के प्रति रहता है, प्रकट कर सके। चाचीजी की भी वही स्थिति है। अपनी करनी का उनके मन मे इस अधेडावस्था मे पश्चात्ताप है, अपने प्रति रोष वे प्रकट कर नही पाती, तो मुझे लेकर ही अपने मन को सन्तोष दे लेती हैं। मैं बुरी हू, पापिनी हू, कुल-कलकिनी हू, कहकर ही वे अपने मन को शान्ति दे लेती हैं। मेरा किसी पुरुप से दो बातें कर लेना-भर उनके लिए एक भारी बातचीत का विपय बन जाता है। हो सकता है, आज मेरी मा होती तो चाचीजी इस प्रकार खुलेआम मुझे कुल-कलकिनी कहकर न पुकारती। उन्हे भी किसीका डर रहता, जो-जो गुल उन्होने खिलाए हैं, शायद तब वैसा करने का अवसर इनको न मिलता और उस हालत मे इनका मन इस प्रकार अपने ही कृत्यो पर यू लज्जित न होता, तो हो सकता है ये मुझे भी पापिनी और कुल-कलकिनी की उपाधिया न देती।

मेरे लिये चाचीजी के मन मे मोह कभी भी नही रहा है। परन्तु भाभी के आते ही उन्हे मेरे विरुद्ध इस प्रकार भडकाती रहेगी, यह मैंने कभी भी नही सोचा था। चाचाजी के स्वर्गवास को अभी थोडे ही दिन हुए है और ये सब भुलाकर मेरी बुराइया करने लगी हैं। भाभी का मन फेरने के लिए जी-जान से प्रयत्न कर रही हैं। बचपन मे इनका कठोर शासन रहा और अव भाभी को सिखा-पढाकर तैयार करने की चेष्टा मे हैं। ससार का यही नियम रहा है कि जो दब जाता है उसे कुचलने मे स्वाभाविक आनन्द आता है। चाचीजी ने चाचाजी की आड मे जो-जो पाप किए हैं, वह ससार नही जानता, क्योकि लुगाई को खसम की आड़ और घरम की दाढ़ !

मैं यही सब सोच रही थी कि भाभी आ गई थी । मेरी आखो मे न जाने कब आसू आ गए थे, मैंने शीघ्रता से उन्हे छुपाकर पोछ लिया । परन्तु भाभी ने तो उन्हे देख ही लिया था । बोली, "क्यो सुनीता, ये आसू कैसे है ?"

"एक दिन जान जाओगी भाभी ! अभी तो तुम इस घर मे आई ही हो, इतनी जल्दी सब जानने की क्या आवश्यकता ?"

"फिर भी ?"

"क्या तुम्हे कुछ भी नही पता ! इतनी भोली तो मत बनो भाभी । चाचीजी···कुल-कलकिनी, पापिनी और न जाने क्या-क्या तो अभी मुझे बनाकर गई हैं भाभी !"

"धत्, ऐसी बाते मुह पर नही लाते । कौन-सा पाप तुमने किया है जिससे कुल पर कलक लग गया ?"

"यह मेरे से क्यो पूछती हो, चाचीजी से क्यो नही पूछ लिया ?" मैंने रुआसी आवाज़ मे कहा ।

"जब घर मे बड़े लोग विवेक खो बैठते हैं तो छोटो के ऊपर भार आन पडता है शान्ति बनाए रखने का । यह क्या भूल जाती हो सुनीता ?"

"भाभी, क्या प्रेम करने से मैं कुल-कलकिनी बन गई हू ?"

"पगली है सुनीता, प्राणी का स्वभाव ही है प्रेम करना । जो प्रेम नही करता, वह मनुष्य नही है । फिर प्रेम जैसी पवित्र भावना को, जो जग मे प्राणी-मात्र को जीवन का सन्देश देती है, कैसे पाप कह दू मैं ?"

मैं चुप हो गई थी । भाभी के शब्दो से ऐसी सात्वना मिली थी, जैसी जलती हुई आषाढ की धरती को काले बादल देखकर मिलती है ।

कितनी ही देर भाभी और मैं उसी प्रकार चुप्पी साधे कुछ सोचते रहे थे । फिर एकाएक भाभी ने ही कहा था, "उठो सुनीता, दो दिन मे जाना है, सामान ठीक कर लें ।"

भाभी और मैं दिल्ली आ गए हैं । घर बडे दादा को यहा भी सरकारी

मिला है, काकानगर मे। जैसा उत्तरप्रदेश मे मिलता है उतना वडा तो नही है, फिर भी अच्छा है। बडे शहरों मे बडे-बडे बंगलो की अधिकता नही होती जितनी कि फ्लैट-टाइप बगलो की। हमारा यह घर भी उस चलन का अपवाद नही है। तीन कमरे का फ्लैट, और सामने फुलवारी। फुलवारी की एक ओर मोटर गैरेज भी है। मोटर तो बड़े दादा के पास नही है, और अभी तक उनको उसकी कमी कभी खली नही थी। पुलिस अफसर है, एक-आध सरकारी जीप बगले मे सदैव खड़ी ही रहती थी। परन्तु यहां तो किसी खास केस की खोजबीन के लिए आए है, जीप कभी-कदा मिल जाती है। इसके लिए उनका मन स्थिर नही रहता। मैं इधर कई बार उन्हे भाभी को मजाक मे कहते सुन चुकी हू, "हमे तो बहुत आशा थी बेगम, तुम कम से कम तीन-चार हज़ार नगद लाओगी तो हम एक मोटर खरीदेगे!"

भाभी इसपर धीरे से उत्तर देती, "आपने मागे होते तो मिल जाते।"

बस, इतनी-सी बात तो मैंने इधर कई बार सुनी थी। पर एकाएक कल रात भाभी के कमरे मे से बहुत ज़ोर से बड़े दादा की चिल्लाने की आवाज आई। दरवाज़े मेरे सब बन्द थे, शब्द ठीक से सुनाई नही पडे। भाभी का धीरे-धीरे सुबकी लेकर रोना सुनाई पडा था।

इधर दो-तीन दिन से भाभी कुछ-कुछ उदास रहने लगी हैं। पूछने पर उन्होने बताया नही कुछ। मैंने ही कहा एक दिन, "आप अपनी मा के यहां हो आइए एक दिन भाभी,यही चादनीचौक मे ही तो हैं वे लोग।"

"नही सुनीता, कुछ वात ही नही, तुम तो ऐसे ही घबरा जाती हो।" कहकर भाभी ने टाल दिया था। परन्तु आज सुबह जब बड़े दादा दफ्तर चले गए तो मैंने उन्हे पकड लिया, बोली, "ठीक-ठीक कहो भाभी, रात को बड़े दादा चिल्ला क्यो रहे थे?"

भाभी का सारा शरीर उद्वेग से काप गया। अपने को किसी तरह सयत कर बोली, "तुम तो अपने दादा को मुझसे अधिक जानती हो।"

मुझे जो आशंका थी आखिर वह सत्य निकली। क्या बड़े दादा भाभी के जीवन को भी खिलवाड़ समझकर उसके साथ खेल रहे हैं?

"फिर भी कुछ तो कहो, अब की क्या कह रहे हैं?"

"कहते हैं · कहते हैं कि अपने घर से चार हज़ार रुपये ले आओ, दो हज़ार पास से डालकर छ हज़ार की मोटर लूगा।"

"भाभी, पर बड़े दादा के पास तो कई छ हज़ार रखे हैं, तुम्हे किस-लिए बाध्य कर रहे हैं मांगने को?"

"सुनीता, उनकी दृष्टि से उन्हे चार-पाच हज़ार की कमी रह गई है दहेज में, इसीलिए वे रुपये मुझे पिताजी से मागने पड़ेंगे, नही तो मैं इस घर मे नही रह सकती।"

"भाभी, ऐसा मत कहो!" मैं पागलो की तरह चिल्ला उठी, "यह घर अकेले वडे दादा का नही है, इस घर की तुम लक्ष्मी हो, बहू हो। आने दो वड़े दादा को, आज मैं देख लूगी। मां नही तो मैं तो हू। मेरे साथ जो-जो घटा है, तुम्हारे साथ कदापि नही घटने दूगी।"

"वस, वस सुनीता, उत्तेजित नही होते। तुम्हारी कब-कब चली है अपने वड़े दादा के सम्मुख कि इस वार तुम्हारी मान जाएगे? आज से नही, जिस दिन से, आठ महीने पहले मैं व्याहकर आई थी, उसी दिन से मेरे पीछे लगे हैं। दो हज़ार तो मेरे पास नगद रखे हैं, दो हजार के लिए मैंने अपने भाई को पत्र लिख दिया है। पिताजी से मैं नही मागूगी, उन्हे तो अभी तीन और लडकियो का व्याह करना है।"

सुनकर मैं चुप रह गई थी। भाभी सच ही तो कहती हैं—मैं कौन हू वड़े दादा के सामने? मेरा अस्तित्व ही क्या है? यदि मैं कुछ भी होती तो आज वन्दी की भाति दस वरसो से जीवन व्यतीत न करती। किसीको पत्र तक लिखने की मुझे आज्ञा नही है, फिर कही नौकरी करने, कही वाहर जाकर पढने या वड़े दादा से सवाल-जवाब करनेवाली मैं कौन हू? भाभी के आने से पहले मैं केवल उनके घर-द्वार देखने के लिए एक नौकरानी की तरह थी। अव, अव शायद उस हैसियत मे भी मेरी

आवश्यकता उन्हे न हो। हो सकता है अनधिकार यहा रह रही हू। मैंने मन ही मन निश्चय किया कि अब मैं कानपुर रहा करूगी; बडे दादा को मेरी इतनी आवश्यकता नही जितनी सोम भैया को है।

इधर मैं अपने ऊपर, अपने मन की स्थिति के ऊपर स्वयं ही परेशान हू। वैसे इस परेशानी से मुझे शान्ति ही अधिक है। दिनेश के बारे मे जानने को उत्सुक हू कि केस का क्या बना। पर मन मे उतनी तीव्रता अब नही रह गई है। बस, एक उत्सुकता बाकी है कि दिनेश के केस का क्या हुआ। शायद मैं अपनी इच्छाशक्ति से अपने मन और मस्तिष्क दोनो को बस मे करने मे समर्थ हो गई हू। नही, नही—ऐसा गर्व मैं नही कर सकती; ऋषियो या तपस्वियो की भाति इतनी सामर्थ्य मुझमे नही कि मैं मन को बस मे कर लू। समय की दीवार है जो लम्बी होती जा रही है और कर्तव्य की परते उसपर पलस्तर कर उसे दृढ़ बना रही हैं। हां, ऐसा ही है। मुझे ऐसा अनुभव होता है कि अब फिर कभी दिनेश को देखने की प्रबल इच्छा नही होगी। फिर भी उसका हित जानने को मन उत्सुक है। एक दिन मैंने भाभी से पूछ ही लिया, "भाभी, एक काम करोगी?"

"कहो न?"

"नरेन्द्र भैया से पत्र द्वारा पूछो कि दिनेश के केस का क्या हुआ!" कहते-कहते मै शर्मा गई।

भाभी बोली, "तो इसमे लजाने की कौन-सी बात है सुन्नी? जिस पुरुष ने तुम्हे इतना स्नेह दिया, इतना प्रेम दिया, जब घर-भर तुमसे घृणा और उपेक्षा की भावना रखता था, उसका हित जानने के लिए इतना लजाना किसलिए?" भाभी ने मेरे मन की बात जाननी चाही। दिनेश को लेकर अभी तक उनसे कोई बात नही हुई थी।

"सच भाभी, मुझे लजाना नही चाहिए, परन्तु घर मे सब कोई इस सम्बन्ध को इतनी हीन दृष्टि से देखता रहा है कि तुम्हारे सामने कहते-कहते मैं लजा गई।"

भाभी एक उच्छ्वास भरतीं हुई बोली, "यही तो विडम्बना है, एक दृष्टि के फेर से क्या से क्या हो गया। तुम्हारे बडे दादा और चाचीजी यदि इस सम्बन्ध का कारण ढूढते और प्यार और दिलासे से तुम्हे समझा देते, तो बात उतनी बढती नही, जितनी आज बढ चुकी है। कितना कष्ट मन ही मन तुम झेलती हो सुनीता ! यदि तुम्हे, जब तुम अबोध थी, तुम्हारे कर्तव्य का ज्ञान चाचीजी प्यार से करवा देती तो तुम्हारी भावनाए दिनेश के प्रति श्रद्धा की ही रहती, वे प्रेम मे बदलती ही नही। क्योकि जब तुम्हे बोध हुआ और अपने कर्तव्य का ज्ञान हुआ तो तुम लक्ष्य तक पहुचकर भी लौट आई। दिनेश के पुत्र-जन्म ने तुम्हारी दृष्टि के ज्ञान को खोल दिया। तुमने मन ही मन अपना मार्ग दूसरा बना लिया। जो इतना बडा त्याग कर सकती है उसे मैं कैसे दोप दू सुनीता ! दोप तुम्हारा नही, परिस्थितियों का था, तुम्हारे अविभावको का था..... "

मैंने बीच मे ही काटा, "दोप मेरा ही था भाभी, उसे दूसरे के सिर मढ-कर अपनी आत्मा को धैर्य बधाना अपने को छलना होगा। पर जो कुछ घट गया वह लौटकर वापस नही आ सकता, इसलिए बिसरा देना ही हितकर है।"

भाभी बोली, "तुम जो इतनी भावनामयी हो, इतनी करुणामयी हो, कैसे अपने हृदय को वज्र-सा कठोर बनाने की चेष्टा मे दिन-रात रत रहती हो ! तिल-तिल कर जला करती हो।"

"कहा भाभी, यह तो तुम्हारे मन का भ्रम है। मैं तो खाली अपने कर्तव्य का पालन कर रही हू। भावना से कर्तव्य ऊचा है। इस देश की नारियों का सदैव यही मन्तव्य रहा है भाभी।"

"कैसी ज्ञान-भरी बातें करने लगी हो सुन्नी ! निरन्तर दुखो की अग्नि मे तपते रहने से तुम्हारी आत्मा कचन-सी पवित्र हो गई है रानी। इतनी आयु और इतनी दूर की सूझ, जिसमे स्वार्थ की बू भी नही ! भगवान तुम्हे बहुत सुख देंगे रानी, तुम राजरानी बनोगी !"

ऐसा कहकर भाभी ने प्यार से मेरा माथा चूम लिया। मुझे इतने

दुलार से, इतने अधिक स्नेह के आवेग से रुलाई आ गई, मैं भाभी के कन्धे पर सिर टेककर कुछ देर रोती रही, भाभी प्यार से सिर सहलाती रही। मुझे लगा कि मुझे आज मा का, बहिन का, भाभी का, सबका स्नेह इस मंगलमयी भाभी से ही मिल गया है। मेरा वर्षों से भूखा मन स्नेह की वर्षा से समूचा सीज गया, मेरी आत्मा अभिभूत हो गई।

"अच्छा तो मैं नरेन्द्र भाई को पत्र लिख दू सुनीता, तुम अपना यह कसीदा पूरा कर डालो तब तक।" कहकर भाभी चली गईं।

कल भाभी के भाई साहब ने दो हज़ार रुपये भेज दिए हैं बैंक-ड्राफ्ट के द्वारा। ड्राफ्ट देखकर बडे दादा 'ही-ही' कर हस दिए थे और भाभी से चुहल मे बोले, "बेगम, आखिर हो तुम पक्की औरत! मैंने तो ऐसे ही मज़ाक मे कह दिया था, परन्तु तुमने तो पति के मज़ाक को भी आज्ञा मानकर तुरन्त माग कर दी। अपने घर का स्त्रिया इसी प्रकार खयाल रखती हैं; इसीलिए कहा जाता है—विन गृहिणी घर भूत का डेरा!"

भाभी कुछ नही बोली थी। वे क्या कहती कि 'मरता क्या न करता!' मैं तो ड्राफ्ट देखते ही सिहर गई थी यही सोचकर कि भाभी के भाई साहब क्या सोचते होगे—कैसे कमीने लोगो से पाला पडा है! बडे दादा ने तो प्रत्येक क्षेत्र मे कमाल हासिल कर लिया है। कमीनेपन और बेशर्मी की भी कोई सीमा है!

मोटर तो आनी ही थी और उन दो हज़ार रुपयो के पहले ही वह आ भी गई थी। किसीकी कुछ देर चली हुई 'हिन्दुस्तान' गाड़ी थी, आठ हज़ार मे बडे दादा ने उसे करीब एक महीना हुआ खरीद लिया है। वे चाहते तो अम्बेसडर या स्टैंडर्ड या कोई अन्य नई गाडी खरीद सकते थे, इतने रुपये तो उनके पास हैं ही, परन्तु बडी भाभी के नैहरवालो से दो हज़ार रुपये मागने मे क्या सार है, यह मुझे अभी भी समझ मे ठीक से नही आया। इन्ही सब बातो से कभी-कभी मन बहुत ऊब जाता है। बडे दादा मेरे भाई हैं, मुझे उनके प्रति ऐसी बाते सोचनी भी नही चाहिए, परन्तु न जाने क्यो, कभी-कभी यह घर छोड़ देने की तीव्र इच्छा होती है। शायद ऐसा होता

ही है, यह प्रकृति का नियम है। यह स्वाभाविक है। प्राणी जब समझने-बूझने लायक हो जाता है तो उसे स्वतन्त्रता चाहिए—जैसे वह चाहे, विचर सके। परन्तु मैं तो न चाहते हुए भी वह सब कुछ देखती हू, सहती हू, करती हू, जो न मुझे देखना चाहिए, न सहना चाहिए और न करना चाहिए।

कानपुर जाने के लिए मैंने कहा भी था। भाभी और बडे दादा दोनो ही नही माने। भाभी को छ महीने का गर्भ है, मैं कैसे जा सकती हू ऐसी दशा मे अकेले छोडकर ! मुझे इस बात का ज्ञान नही था, नही तो मैं जाने के लिए कहती ही नही, जैसे आज तक अपने को सयम से रख बड़े दादा के संग रहती आई हू, अभी भी पडी रहती। हा, मैं अपने इस जीवन के ढर्रे को पडे रहना ही समझती हू। न कोई उद्देश्य, न कोई काम। कभी सोचती हू, मैं किसलिए जीवित हू ? बड़े दादा तो मुझे कभी भी, किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नही देंगे। इस जीवन का लाभ क्या ? क्या मैं बोझ नही हू इस धरती पर ? निरर्थक पडे रहना, नि शब्द सहते जाना। चिऊटी की चाल, चिऊटी की ढाल !

आजकल फिर भी कुछ काम रहता है तो मन इतना उदास नही हो रहा। भाभी हैं घर मे, परन्तु वे अधिक से अधिक समय सिलाई मे लगाती हैं। फिर भी घर का सूनापन बहुत कुछ मिट-सा गया है। शाम को बड़ दादा के कोई न कोई मित्र अपनी पत्नी-सहित चले आते हैं, नही तो हम लोग कभी कनाट प्लेस या लाजपतराय मार्केट कुछ खरीदने चले जाते है। कुछ नही तो यूही घूमने निकल जाते हैं इण्डिया गेट या कनाट प्लेस की ओर। पहले-पहले मैं बडे दादा और भाभी के सग जाना नही चाहती थी, परन्तु भाभी नही मानी। पता नही झूठ कि सच, उन्होने कहा था, "सुनीता, तुम्हारे दादा के सग अकेले जाने से मैं घबराती हू, तुम साथ रहती हो तो एक सहारा रहता है, क्योकि तुम अपने भाई के बदलते मूडो को अच्छी प्रकार जानती हो।" परन्तु सुनकर मैंने इतना अवश्य कहा था, "क्यो भाभी, बडे दादा इतने कठोर तुम्हारे साथ तो नही है ?"

भाभी ने व्यग्रता से कहा था, "नही, नही, कठोर की बात नही, उनका

व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा है कि मैं उनके निकट घबरा जाती हू । फिर तुम्हें घर मे भी कौन-सा काम है, चलने मे हर्ज ही क्या है ?"

बडे दादा ने भी कहा था, "चलो सुनीता, घर पर पडे-पडे क्या करोगी ?"

तब से मैं भी जाने लगी हू । परन्तु फिर भी कभी-कभी बहाना बना-कर घर पर रह जाती हू । भाभी का बड़े दादा के निकट जो सकोच है, जिसे वे घबराना कहती हैं, कैसे दूर होगा, यदि मैं पिछलग्गू की भाति सदैव उनके पीछे लगी रही । बडे दादा के सग उनका खुलकर हसना-बोलना ही हित-कर है, यू घबराती रही तो जीवन जटिल हो जाएगा । बडे दादा तो दो वर्ष मे ही उनके व्यक्तित्व को तो क्या, आत्मा तक को कुचल देंगे । भाभी को बडे दादा के सग मित्रता की सीढी तक पहुंचना ही होगा, नही तो यह परिवार नष्ट हो जाएगा । ओह, ऐसा सोचती हू तो काप जाती हू । सुना करती हू—मा-बाबूजी का आपस मे बहुत प्यार था, उन्हीकी सन्तान हैं बड़े दादा, जो भाभी को पत्नी नही बल्कि आज्ञा माननेवाली एक मशीन समझते हैं । यहा तक कि भाभी को उनके मनपसन्द कपडा भी पहनने नही दिया जाता । सच तो यह है, बडे दादा स्वय ही बाज़ार से अपनी पसन्द के कपडे ले आते हैं, भाभी को उन्होने कभी पूछा भी नही कि तुम्हे क्या चाहिए ? पसन्द है कि नही ? सूती साड़ी का चलन है, परन्तु बडे दादा इसी आड मे बारह रुपये से अधिक दाम की साडी कभी नही लाते । भाभी कभी बाहर जाती हैं तो अपनी मा के यहा की पुरानी-पुरानी दो-तीन साडी रखी है वही पहन जाती है । जाना भी कही उनकी पसन्द से नही होता । बडे दादा की जहा आज्ञा होती है, वही जाना होता है । विवाह के उपरान्त यदि यही जीवन है तो मुझे इस जीवन से एक अजीब-सी घृणा हो गई है, एक अजीब-सी विरक्ति हो गई है ।

मैं अपने ध्यान मे इतनी तल्लीन थी कि मैंने देखा भी नही, कब भाभी ने छोटी भाभी का पत्र मेरे सम्मुख रख दिया । पत्र मैंने उठा लिया और शीघ्रता से पढने लगी । अन्त मे जाकर भाभी ने लिखा है :

सुनीता, एक खुशखबरी सुनाऊ तो क्या खिलाओगी ? बहुत भाग्यवान

हो। लडकियो का विवाह एक समस्या है, इसीलिए न कहती हू तुम बहुत भाग्यवान हो। मेहता साहब, जो बडे दादा के मित्र हैं, आजकल लखनऊ मे लगे हुए हैं। प्राय भेंट हो जाती है। तुम्हारी बहुत ही तारीफ किया करते थे। मेरी समझ मे कुछ आता नही था। आखिर उन्होने ही कल अपने मुह से मुझे कहा, 'भाभी, आप सुनीता को मुझे दे दीजिए।' मैं तो बहुत प्रसन्न हू। हमारे इतने भाग कि घर बैठे-बिठाए लड़का मिल गया और वह भी इतना अच्छा। जानती हो न, मेहता साहब को पूरे आठ सौ रुपये मिलते है और बहुत अच्छे घर से हैं। बीस हज़ार तो उनके अपने पास जमा हैं। तुम्हे मेरी सौगन्ध सुनीता, अब 'न' नही कहना। मैंने उन्हे तुम्हारे विगत जीवन के बारे मे बताना चाहा, तो बोले, 'मैं सब जानता हू, और यदि नही भी जानता तो कुछ सुनना भी नही चाहता।' तो सुना तुमने, ऐसी निष्ठा, ऐसी आस्था, ऐसा प्रेम ठुकराने योग्य नही है सुनीता। किसीके अधेरे घर मे यदि तुम्हारी आत्मा की ज्योति से प्रकाश होता है तो उस प्रकाश को समेटने मे भी कुछ नही रखा, उसे दे देने मे ही लाभ हैं। तुम्हारे भैया तुम्हे प्यार भेज रहे हैं।

प्यार-सहित,

तुम्हारी
कामनी भाभी

११

पत्र पढकर मैंने उसे मेज पर रख दिया है। आखें बन्द हैं परन्तु लगता है जैसे खुली हैं और मेहता साहब स्वय मुझसे कह रहे है, 'आप वायलिन बहुत अच्छा बजा लेती हैं ! आप कही कोई काम क्यो नही कर लेती, यू बैठे-बैठे तो मन ऊब जाता होगा ?……क्या आज आप खाना नही खाएगी ?' एक-एक घटना, जब-जब मेरी बातचीत मेहता साहब से हुई थी, मेरी बन्द आखो के सामने साकार हो उठी है। जानती हू, मेहता साहब जैसे पुरुष ससार मे बहुत कम हैं। वह व्यक्ति अन्य व्यक्तियो से भिन्न है। वे इतने गम्भीर हैं कि ऐसी बात को मजाक के रूप मे कभी नही ले सकते, धोखा भी नही दे सकते, परन्तु……फिर चोट खाया हुआ यह मन ही तो है, सहसा ही 'हा' नही कह सकता। कौन जाने कभी 'हा' होगी भी कि नही। मेहता साहब की ओर से मैं एकदम निश्चित-सी हू, परन्तु मुझे अपने से ही डर है। मेरा मन ही तो मेरा नही है। आज वह दिनेश का भी नही रहा, परन्तु वह पूर्णतया मेरा भी नही है।

"क्या हो रहा है सुनीता ?" कहते-कहते शान्ता, हमारी पडोसिन, ने प्रवेश किया।

मैंने पत्र को उठाकर छुपाना चाहा, परन्तु शान्ता ने उसे छीन लिया। बोली, "वाह, किसका प्रेमपत्र है जो हमसे भी छुपाया जा रहा है ?"

मैंने कोई उत्तर नही दिया। वह पत्र पढने लगी, बिना मेरी अनुमति प्राप्त किए ही। कई लोग बिना कारण ही ऐसे आचरण करने लगते हैं।

पत्र पढकर बोली, "मैं तो समझी थी कोई प्रेमपत्र है, पर यह तो तुम्हारी भाभी का है। कहो, अब क्या कहती हो ? बेचारे मेहता साहब का प्रस्ताव स्वीकृत है कि अस्वीकृत, कुछ तो कहो अपनी सखी से !"

शान्ता और मेरे बीच कोई पर्दा नही है। इन थोड़े-से महीनों मे ही

हम दोनो खूब एक-दूसरे के निकट आ गई हैं। मेरी सखी एक कुसुम थी, अब वह भी पत्र नही लिखती। दिल्ली आने पर शान्ता से भेंट हुई कि थोडे दिनो मे मित्रता ने एक गाढा रग ले लिया है। "क्या कहू, तुमसे कभी कुछ छुपाया नही है, कहने लायक होगा तो अवश्य कहूगी।" मैंने कहा।

"वाह, तुम्हारा विवाह हो रहा है और तुम्हारे पास कुछ कहने लायक ही नही है! बनो मत!"

"मैं ठीक कह रही हू शान्ता! तुम विश्वास करो, विवाह मैं नहीं करूगी।"

"क्यो?"

"बस, यूही।"

"कारण कुछ तो होगा।"

"कुछ भी तो कारण नही है, मुझे स्वय ही पता नही तो मैं तुम्हे क्या बताऊं!"

"तुम इतनी विरक्ति-भरी बातें मत किया करो सुनीता, मुझे यह देख-देखकर अच्छा नही लगता। इसी आयु मे साध्वी-सी बनी रहती हो। यही समय है—मैं तो कहूगी, समय निकल गया—तुम्हे अब विवाह कर ही लेना चाहिए। मैं तो तुम्हारी भाभी से भी इस बारे मे बातचीत करनेवाली थी।" शान्ता ने बड़े सहज ढग से उपदेश दे दिया।

"क्यो, तुमने विवाह कर लिया है तो क्या सभीके लिए आवश्यक है कि वे भी बन्धन मे बध ही जाए?"

"पागल मत बनो सुनीता। तुम पचीस-छबीस की तो होगी ही। अब अधिक देर ठीक नही। तुम नही जानती। बडी आयु तक कुवारी रहनेवाली लड़कियो की मानसिक मनोदशा और अवस्था बड़ी अजीब हो जाती है। उनकी मान्यताएं भी विचित्र हो जाती हैं।"

"तुम चिन्ता मत करो शान्ता। तुम्हारी सुनीता किसी पुरुष के साथ भाग नही जाएगी।"

"आज तुम जिसे भाग जाना कहती हो, कल तुम्हे वह एक आवश्यकता अनुभव होगी।"

"मैं इसे नही मानती। क्या स्त्री पुरुष के विना रह ही नही सकती ?"

"जिस अर्थ मे तुम ले रही हो, उस अर्थ मे तो वह रह सकती है, वह भी कठोर सयम के उपरान्त। परन्तु प्रत्येक नारी अपना स्वय का एक क्षेत्र चाहती है, जहा की वह स्वामिनी हो। उसे हम-तुम घर कहते हैं—वह समाज का नियम है, प्रकृति का नियम है। मनुष्य का स्वभाव ऐसा ही है कि वह किसी उद्देश्य के हेतु जीना चाहता है। विवाह नही करोगी तो कौन उद्देश्य है तुम्हारे सामने ?"

अब मैं सकपका गई। कौन उद्देश्य है, मेरा जीवन तो एकदम निसदेश है। दूसरो के ऊपर एक भार है।

"उद्देश्य नही है तो बना लूगी, परन्तु विवाह नही करूगी।" मैंने कहा।

"बनाने से उद्देश्य बना नही करते सुनीता, वे अपने-आप सामने आ जाया करते हैं। मन के किसी कोने मे से सामने आकर प्रकट हो जाया करते हैं। फिर तुम क्या बडे दादा और घरवालो के विपरीत कुछ कर पाओगी ? इसीलिए न कहती हू कि कल्याण इसीमे है कि तुम विवाह कर लो।" कहकर शान्ता चुप हो गई।

मैंने कोई उत्तर नही दिया। शान्ता ने अनजाने मे ही मेरे सामने वही पुरानी समस्या फिर से लाकर खडी कर दी थी कि इस घर से छुटकारा पाने का विवाह के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नही। संगीत मे शिक्षा प्राप्त कर भी मैं अपने पाव पर खड़ी नही हो सकती। मेरे बचपन की एक भूल को बडे दादा और चाचीजी ने बढा-चढाकर इतना तूल दे दिया है कि वह इन लोगो के लिए एक बहुत बडा साधन हो गया है। किसी प्रकार की स्वतन्त्रता के सामने घर की लाज, कुल की मर्यादा की रक्षा की दुहाई दे दी जाती है।

शान्ता का कथन कि 'प्राणी किसी उद्देश्य से जीता है, वह स्वतन्त्र

अपना एक क्षेत्र चाहता है,' इसमे भी सत्यता है यह मैं मानती हू । यही सत्य तो मेरे मन को कभी-कभी इतना मथ डालता है कि मेरा मन इस घर की चारदीवारी को तोड़कर भाग जाना चाहता है । शान्ता ने भी आज अभी कहा था कि किसी दिन भाग जाना एक आवश्यकता हो जाएगी ।

मैं सिहर उठी । मेरे परिवार मे आज तक किसी लड़की ने घर मे से बाहर पांव भी नही रखा था । मैं ही पहली लडकी हू परिवार की, जिसने बी० ए० तक विद्या ग्रहण की, संगीत सीखा और चाचीजी के शब्दो मे दिनेश के साथ प्रेम कर कुल पर कलक लगाया । क्या''''''तो क्या एक दिन मेरे नाम के आगे 'सुनीता घर छोड़ भाग गई' भी जोड दिया जाएगा । ओह ! नही, नही, यह तो मुझसे कभी नही होगा । जैसे भी हो, मैं भाभी के बच्चो से मन बहला लूगी । मेरा उपेक्षित और स्नेहवचित जीवन बच्चो की देखभाल मे ही बीत जाएगा । पर मैं अभी विवाह नही करूगी, शायद कभी भी नहीं कर पाऊंगी । कामनी भाभी को पत्र लिखकर मैंने अपना निश्चय जतला दिया ।

रजनी ने घूंघट उघाडकर अपने काले-काले केशो को फैलाकर धरणी पर नीरवता का राज्य बसा दिया हैं । अलसाई आखें झपकी लेने को आतुर हैं । आज बहुत दिनो के उपरान्त विश्राम के कुछ क्षण आए हैं । भाभी को लडकी हुई है, आज इसीकी छठी के उपलक्ष्य मे बहुत बड़ी पार्टी दी गई थी । बाहर शामियाने अभी भी लगे हैं, रंग-बिरगी कागज़ की पताकाएं और डोरियां लटक रही हैं, इधर-उधर से बासी फूलो की गन्ध आ रही है, जिन्हे देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यहा अभी हाल ही मे कोई बड़ा उत्सव हुआ होगा ।

यही बात तो जीवन मे भी लागू होती है । किसी बडी प्रसन्नता व उत्सुकता के बाद प्राय. मन उदास व गम्भीर हो जाता है । प्रकाश की किरणो के बाद अधेरा तो अवश्यम्भावी है । जीवन की आखमिचौनी मे उसकी भूमिका है । अभिशाप वह नही है, क्योकि वह हमे भीतर देखने और

अपने को और अधिक समझने के लिए उत्प्रेरित करता है। किन्तु यदि वह हमपर बोझ बनकर छा जाए तो हानि भी काम नही है। शान्ता मे, भीतर से, बाहर से, आगे से, पीछे से देखकर चलने की शक्ति खूब है। न जाने कब और कौन उसे सब समझाकर कह जाता है।

सुबह जब भाग-दौड़कर मैं काम कर रही थी कि शान्ता ने आकर मुझसे कहा, "इतनी सलग्नता से काम करती हो, तभी तो तुम्हारे दादा तुम्हारा विवाह करना नही चाहते। छोड़ो तुम, आराम करो—कुछ काम मुझे भी बताओ।"

मैं आश्चर्य से देखती रह गई। बोली, "तुम सब समय एक ही राग अलापती रहती हो, ब्याह और ब्याह ! क्या घर मे काम होता तो तुम यू भाग-दौड़कर काम नही करती ?"

"करती तो, पर साथ मे कोई सहायक तो ले लेती। यू झाडू लेकर फर्श तक साफ न करती।"

मैंने कहा, "तुम ठहरी शान्ता मेम साहिब। बाल कटे हुए, होठो पर लिपस्टिक, देह पर सदैव इस्तरी की हुई कश्मीर सिल्क की साड़ी, पांव मे कामदार चप्पल। तुम यह काम कर भी कैसे सकती हो ! हा, तुम्हे किसने कहा कि मेरे दादा मेरा विवाह करना नही चाहते हैं ?"

"मुझे मालूम है, बस इतना ही तुम जान लो, उससे आगे मैं कुछ भी नही कहूगी।"

"तुम्हे कुछ भी मालूम नही है। बडे दादा तो बहुत चाहते हैं, पर मैंने ही मना कर रखा है।"

शान्ता ने व्यग्य किया, "हू, बड़ी लाड़ली बहिन हो न। हा, एकलौती बहिन ठहरी, तुम्हारी बात सुनेंगे क्यो नही !"

कहने का ढग ऐसा था कि मुझसे रहा न गया। मैंने आग्रह किया। शान्ता बोली, "तुम्हारे पैसे पर आख लगी है।"

मैंने सरोप कहा, "झूठ ! फिर तुम्हे किसने कहा, मेरे पास पैसा है ?"

अब की फिर शान्ता ने चोट की, "तुम बेगाना समझती हो तो सारा

संसार तो ऐसा नही समझता। तुम्हारी भाभी के मुह से ही सुना था कि सुनीता के पास पचास हज़ार के लगभग रुपये हैं।"

"तो उससे क्या होता है? बड़े दादा कैसे भी हो, वे ऐसा कदापि नही करेंगे। शान्ता, तुम नही जानती, बड़े दादा ने अपने मन से सदैव मुझे चाहा है, वे मेरा अहित कभी नही कर सकते।"

शान्ता चुप हो गई। मैं काम करने लगी थी। उस समय मुझे शान्ता पर रह-रहकर क्रोध आ रहा था। किसीके घर क्या हो रहा है, यह सब जानने की उत्सुकता रखना क्या अच्छी बात है! परन्तु यह ध्यान आते ही कि वह अन्तर के गोपनीय अन्तरतम से मेरी ही भलाई चाहती है, तो मुझे अपने से घृणा हो आई कि मैं शान्ता के लिए ऐसा क्यो सोच पाई। शान्ता नित्य नई बात कह जाती है। उस दिन कहती थी, 'तुम्हे किसी दिन भागना पडेगा,' आज कहती है कि 'तुम्हारे भाई की तुम्हारे पैसे पर आख लगी है,' कल को कुछ और भी कहेगी। भगवान जाने, कब मेरे जीवन मे स्थिरता आएगी? कब लोग मनमानी बातें करनी छोडेंगे? हो सकता है, शान्ता के कथन मे सच्चाई भी हो। मुझे याद आया है, छोटा भाई सोम भी तो झासी मे कुछ इसी प्रकार की बातें कह रहा था। पर मन मानता नही है। बडे दादा को मेरा सदैव ध्यान बना रहा है।

मेरा दम घुटने लगा है, सर चकराने लगा है। उठकर मैं बाहर लॉन मे आ गई हू। बाहर वातावरण की मधुरता मेरे रोम-रोम को शीतल बना रही है। रजनी रजनीकर की बाहो मे बेसुध, मतवाली, निद्रा मे मग्न है। दो क्षण तक मैं मौन रहकर इस मधुरता का मधु पीना चाहती हू। विचारो का ताता बधा है, पर मैं इस अवर्णनीय सुख को कैसे गवा दू! मन हो रहा है, आज फिर वायलिन की मादक स्वर-लहरियो से इस नीरव साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दू। मन की इस अभिलाषा पर नियन्त्रण करना ही होगा, नही तो बड़े दादा, भाभी और मेहता साहब सब कोई जाग जाएगे। हा, याद आया, मेहता साहब भी तो आए हुए हैं। दिल्ली मे उनके बैंक का बडा दफ्तर है। बडे दादा से कह रहे थे, 'मैं चाहता हू मेरी बदली भी दिल्ली

मे हो जाए। लखनऊ से पंजाब दूर पडता है। घर जाने-आने मे भी तकलीफ होती है।' अभी शायद घर जा रहे है, मार्ग मे दिल्ली ठहरे हैं। वे तो मिलने-भर आए थे, पर दीपा की छठी है, यह जानकर आज-भर रुक गए हैं। कल चले जाएगे तो अच्छा ही होगा। आज दिन-भर मैं मेहता साहब से भागती-भागती रही हू। एक क्षण भी मैंने नही दिया ऐसा कि वे कुछ भी बोल पाए। न अकेले मे और न भीड मे। एक बार पार्टी के दौरान मे, भीड़-भाड़ मे मैंने देखा था, तो वे मेरी ओर ही देख रहे थे। मैंने जान-बूझकर आखें दूसरी ओर मोड ली थी। उस दृष्टि मे मैंने देखी थी अपार आस्था और प्रगाढ प्रेम। मैं उसका प्रतिदान देने मे असमर्थ हूं इसीलिए तो दृष्टि घुमा ली थी मैंने। अनबूझ बन रही हू, अनजान बन रही हू।

एक ठडी सास लेकर मैं अपने कमरे की ओर बढी हूं कि मेरे कानो ने सुना, "दो क्षण रुकिए।" शब्द मेहता साहब के हैं। पीछे घूमकर देखा, सफेद पायजामा और कुरता पहने मेहता साहब खडे हैं। मैंने दृष्टि झुका ली। ज्योत्सना के धीमे प्रकाश मे मेहता साहब सच मे ही दिव्य प्रतीत हो रहे है। "मैं लखनऊ से आपकी कामनी भाभी की दी हुई एक भेंट लाया हू, लीजिए।" मैंने चुपचाप हाथ बढा दिए। उन्होने ही फिर कहा, "दिन-भर अवसर की ताक मे रहा, परन्तु आप काम मे इतनी सलग्न थी कि दे नही पाया। कामनी भाभी की इच्छा है कि इसको आपके सिवाय और किसीको नही सौंपू, और वह भी एकान्त मे।"

बण्डल मैंने ले लिया है। भीतर खोलकर देखने की इच्छा बलवती है, फिर भी मेहता साहब के सामने मन मे कुछ सकोच हो रहा है। उन्होने फिर पूछा, "आप अक्सर इतनी रात तक जागा करती हैं क्या ?" मैंने आखें नीचे किए ही उत्तर दिया, "नही तो।" जो सच है वही मैंने कह दिया है, सहसा अपने कथन पर मैं लज्जित हू। मेहता साहब कही यह न सोचें कि यदि अक्सर इतनी रात गए मैं जागती नही रहती तो आज क्या उन्ही-को लेकर बाहर आई हू। मैंने तुरन्त अपनी जीभ को काट लिया जैसे जो कह चुकी हू, वह लौट आएगा। वे बोले, "नीद मुझे भी नही आ रही

थी। एकाएक आपको खिड़की मे से देखा तो सोचा, आपकी भेंट आपको दे दूं। और कैसा चल रहा है?" मैंने दृष्टि उठाकर देखा और कहा, "सब ठीक है।"

कुछ देर तक कोई नही बोला। मैं दूर एक फूल को देख रही हू जो पूरा खिल गया है और अब कभी भी झर सकता है। मेहता साहब मेरी ओर देख रहे हैं, यह मैं अनुभव कर रही हू। उनकी दृष्टि जैसे मेरे शरीर को बेधकर मेरे हृदय के गहनतम कोने का रहस्य जान लेगी। कामनी भाभी ने कहा है, 'यह प्रेम, यह आस्था ठुकराने के लिए नही,' पर मैं कैसे स्वीकार करूगी। प्रतिदान मे तो कुछ नही है मेरे पास।

"अच्छा, रात अधिक हो रही है, जाइए, अब सो जाइए जाकर!" कहकर मेहता साहब भीतर चले गए।

उनके शब्दो की कोमलता मेरे मन को बेधकर निकल गई। चिर-अतृप्त हृदय को आज प्रेम की कोमलता का अनुभव मिला भी तो मैं उसके योग्य नही हू। कैसी विडम्बना है! भाग्य का कैसा उपहास!

मैंने भीतर आकर शीघ्रता से बण्डल खोला, देखा—बण्डल मे दिनेश को लिखे गए मेरे पत्र हैं। लगा, जैसे सौ-सौ रेलगाड़िया धक्-धक् करती हुई मेरे पर से निकल गई हैं। दिनेश ने मेरे पत्र भी कामनी भाभी को लौटा दिए! इनकी काली छाया उसकी हरी-भरी गृहस्थी पर पड़नी नही चाहिए।

१२

कहते हैं, काजल आख की शोभा है। आख को वह साफ देखने मे सहायता भी करता है, किन्तु तोला-भर काजल आख मे पड़ जाए तो आंख ही पनाह माग बैठे। दु ख और सुख के बारे मे भी जीवन की बस यही अनुभूति है। ऐसा मैंने कही किसी विद्वान का लिखा हुआ पढा था। बड़े दादा के लिए यह युक्ति कितनी ठीक बैठ रही है, यह देख-देखकर आश्चर्य होता है। भगवान ने उन्हे सुख दिया है तो उन्हे भी परिवार में सबका दु ख-सुख देखना चाहिए। मै अपने लिए यह नही कह रही हू, क्योंकि मुझे तो शायद बडे दादा ने कभी भी अपने परिवार का एक सदस्य नही माना है—परन्तु भाभी के प्रति भी वे इतने अन्यायपूर्ण हो जाएगे, इसकी आशा नही थी।

दीपा के दो वर्ष उपरान्त भाभी के बिट्टू हुआ था। बिट्टू भी आज छ महीने का होने को आया है। दीपा को जनमते ही मैंने ले लिया था। वह मेरे साथ सोती है, मेरे साथ खाती है। जब बच्ची थी तो मैंने ही रात को, दिन को, स्टोव पर पानी गर्म कर डूटमैक्स बेबी-फूड की बोतलें उसके लिए तैयार की हैं। बीमारी मे रात-रात-भर कन्धे से लगाकर घूमी हू। भाभी को मा वह समझती नही है, बुआ को उसने जाना है, बुआ को वह जानती है। कभी-कभी भाभी सहज मे ही कह देती है, "सुनीता, तूने मेरी बेटी छीन ली !" मैं हसकर कह देती हू, "कहा, मैं भी तो तुम्हारी हू।"

हां, बात मैं बड़े दादा की कर रही थी, तो जितने कठोर उनको मेरे बचपन ने देखा है, उतना ही नम्र वे अपने बच्चो के साथ हैं। छ महीने का बिट्टू यदि एक से दो बार रो दे, तो भाभी को पाच क्षण तक बडे दादा की कर्कश ध्वनि मे ऊची-नीची बातें सुननी पडती हैं। यदि वे इतना भी कह दें कि आपको दफ्तर जाने मे देरी हो जाएगी इसलिए मैं, रसोईघर मे खाना बना कि नही, यही देखने-भर गई थी, तो बड़े दादा चिल्ला पड़ेगे, "सुन लो

बेगम, कान खोलकर सुन लो, जिस खाने के लिए तुम बिट्टू को छोडकर गई थीं, वह अब कभी भी मेरे हलक के नीचे नही जाएगा।"

उस दिन बडे दादा फिर सच मे ही खाकर नही जाते। वे नही खाते, तो मैं और भाभी भी नही खाती। बच्चो के लिए उनका इतना लगाव देखकर पहले तो भाभी का मातृत्व गौरव की आभा से अरुण हो गया था, परन्तु अधिकता तो चाहे कैसी क्यो न हो, वह खलने लगती है। दो वर्ष की दीपा यदि बगीचे की घास पर नगे पाव चली आए तो घर-भर को दौड़ना पड़ता है जूते हाथ मे लिए उसके पीछे-पीछे। कभी सर्दी हो ही जाए तो बडे दादा मुझे खरी-खोटी तो सुनाते ही हैं, मुझसे दीपा को छीनकर अपने कमरे मे ले जाते हैं, परन्तु दीपा ही रो-रोकर उनका नाक मे दम कर देती है। मेरे पास लाचार होकर उन्हे दीपा को लौटाना ही पडता है।

बातें ये छोटी हैं, कुछ महत्त्वपूर्ण नही है, परन्तु दीपा को खराब करने के लिए पर्याप्त हैं। वह न मा की सुनती है न मेरी। अपने पापा का रोब अभी से दिखाती है। बिट्टू का भी यही होगा। बडे दादा वात्सल्य मे इतने अन्धे हो गए हैं कि स्वय उनको अपने बच्चो के भविष्य के बारे मे कुछ नही सूझता। इसी अपनी धुन मे भाभी का और मेरा मन वे कितनी बार दुखा देते हैं, इसकी कोई गिनती ही नही है। जब-जब दीपा को बडे दादा मुझसे छीनकर ले जाते हैं, मेरा मन अपमान, विषाद और विडम्बना से भर उठता है। पर मैं कर भी क्या सकती हू ? विजडित-सी चुपचाप प्रतीक्षा करती रहती हू, जब तक दीपा भागकर मुझसे आकर फिर चिपट नही जाती। शान्ता तो मेरी यह स्थिति देखकर बहुत झल्लाती है। कितनी बार मुझे बहुत कड़ी-कडी बातें भी कह जाती है। 'आया' तो उसने मेरा नाम ही रख दिया है। एक दिन मैं दीपा को गोद मे लिए-लिए टहला रही थी कि आ गई, आते ही बोली, "सुनीता, मैं अब क्या कर सकती हू, मेरा दोष इसमे बिलकुल नही है।"

"किसमे ? तुम बात अधूरी कह जाती हो शान्ता।"

"इसीमे कि अब आसपास के लोग यदि तुम्हे एक आया न समझकर

स्वय दीपा की मा ……"

"शान्ता ! ……" मैंने डाट दिया।

" यू आखे क्यो दिखाती हो ! वह १६२ न० के फ्लैट मे कोई नये-नये आए है। सुवह माथुर साहब (शान्ता के पति) अभी दफ्तर नही गए थे तो वे लोग भेंट के लिए आए थे। बातचीत के दौरान मे उसने पूछा कि टडन साहब के घर मे कौन-कौन हैं। मैंने बताया कि वे हैं, उनकी बेगम हैं और उनकी बहिन है। बहिन का नाम सुनते ही बोली, 'अच्छा, बहिन वही है न जो अक्सर गोदी मे एक लडकी को लिए रहती है ?'

" मैंने कहा, 'हां।' तो बोली, 'बहिन के एक ही लड़की है कि और भी कोई है ?' " कहकर शान्ता ढीठ-सी मुस्कराने लगी।

मुझे जैसे किसीने तपते लोहे पर रख दिया था। जलन के मारे झुलसी जा रही थी। फिर भी मैंने पूछा, "तब ?"

शान्ता बोली, "मैंने उसे बता दिया कि बहिन का तो अभी ब्याह ही नही हुआ, वह लड़की टडन साहब की है।"

"उसे सुनकर गहरी निराशा हुई होगी ?" मैंने कहा था।

"उसे निराशा क्या होगी ! पर तुम अपना यह आया जैसा वेश बदल लो। बच्चे तो ससार मे सबके होते हैं, परन्तु तुम्हारे घर जैसा दीवाना थोडे ही कोई हो जाता है।"

शान्ता कहते-कहते चुप-सी हो गई थी क्योकि सामने से भाभी भी आ रही थी। उन दिनो बिट्टू होनेवाला था। भाभी आते ही बोली थी, "क्यो, क्या बातचीत हो रही है शान्ता, मैं भी तो सुनू।"

"कुछ नही भाभी, मैं सुनीता से कह रही थी कि आज कृषि-प्रदर्शनी मे साझ को हमारे साथ चलेगी ?"

भाभी ने मेरी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा, "जाओ, हो न आओ सुनीता।"

"दीपा को कौन देखेगा ?"

"मैं देख लूगी।" कहा था भाभी ने।

"तुम्हारे पास क्या वह रहेगी ?" मैंने कहा था।

शान्ता जैसे इसी अवसर की प्रतीक्षा मे थी, बोली, "तो सुनीता, तुम वव थोडे ही जाओगी दीपा के साथ। दो क्षण दीपा रो लेगी तो क्या हो जाएगा ?"

भाभी वोलने ही जा रही थी कि उनसे पहले मैंने कहा, "नही शान्ता, एक तो दीपा का रोना वडे दादा विलकुल सहन नही कर पाएगे, दूसरे मैं लोगो के सग जाऊ, यह वड़े दादा को भाएगा भी नही।"

शान्ता भाभी की ओर देखकर वोली थी, "सच भाभी, आज की वीसवीं सदी मे आप लोगो ने पढ-लिखकर चूल्हे मे डाल दिया है। आप और सुनीता टडन साहव के सामने ऐसे झुक जाती हैं जैसे कुम्हड़े की वेल !"

"झुक जाने मे ही शान्ति है, इसीमे घर का कल्याण है शान्ता। माथुर साहव वहुत अच्छे हैं, जो कहती हो वे मानते हैं। यदि इसके विपरीत होते, तो तुम भी वही करती जो आज मैं कर रही हूं।" भाभी ने कहा था।

शान्ता ने फिर पूछा था, "तो क्या सभी इच्छाए खत्म हो गई हैं ? मन मे कभी कही कुछ उठता ही नही ?"

"उठता क्या नही ! कौन स्त्री नही चाहेगी कि वह रोज़ नही तो कभी-कभी पति के सग मन खोलकर हस ले, बोल ले, वातचीत कर इस गृहस्थी के आनन्द से मन को सहला ले ! अपनी बात पति से कह ले, पति के मन की सुन ले ! दो क्षण पति के साथ वह भी घूम ले, विचर ले ! पर छोड़ो शान्ता, आज कौन-सा विपय ले वैठी हो ! छोड़ो, कोई अपनी वात करो।"

"मेरी वात तो आप सव जानती ही हैं। मैं होती आपके स्थान पर तो टडन साहव भी माथुर की भाति सीधे होते।" कहकर शान्ता चली गई थी उस दिन। भाभी ने हंसकर टाल दिया था। वे जानती हैं, शान्ता आधुनिक युवती का आधुनिकतम स्वरूप है। उसे यह सहनीय नही है कि कोई पति अपनी पत्नी की केवल इसलिए उपेक्षा करे कि वह उसकी 'पत्नी' है। शान्ता

का कहना है कि पति तब तक पति है जब तक वह पत्नी को अपने बराबर की ही एक दूसरी सत्ता मानता है—उसके बाद वह कुछ नही।

बडे दादा अधिकतर घर दस बजे, ग्यारह बजे आते हैं, इधर-उधर मित्रो के साथ घूम-फिरकर लौटते हैं। कभी किसी रेस्टोरेंट से तो कभी किसी पार्टी से। बुलावा तो श्री और श्रीमती का सदैव रहता है, परन्तु बडे दादा कभी भाभी को अब साथ नही ले जाते हैं। पहले-पहले मुझे और भाभी को ले जाकर दिल्ली और नई दिल्ली के सब दर्शनीय स्थलो का अवलोकन करवा दिया। अब तो भाभी को घर से बाहर कदम रखे ही छ -सात महीने हो जाते हैं। भाभी तो दिल्ली की हैं, उनका सब देखा-सुना है। कभी-कभी वे अपने मायके दो-चार दिन को चली जाती हैं। मेरी तो बात ही अलग है—मैं जैसी पहले थी, उससे कुछ अच्छी अब हू। घर मे भाभी है, दीपा है, छोटा बिट्टू है। उधर छोटी भाभी के भी एक लड़की हुई है, अर्चना नाम रखा है कामनी भाभी ने। कानपुर, लखनऊ से पत्र भी आते-जाते हैं। मेरे जीवन मे पहले से कही अधिक हलचल है, परन्तु कही कुछ रिक्त-सा लगता है—सूना-सूना। मुझे कुछ भी समझ मे नही आता कि ऐसा मुझे क्यो अनुभव होता है। शायद यह अनुभूति मेरी जीवन-सहचरी हो गई है, इससे अब कभी छुटकारा पाना नही हो सकेगा।

थोडे दिन हुए छोटी भाभी का लखनऊ से पत्र आया था कि दिनेश के केस का फैसला हो गया है। वे पुन: नौकरी मे ले लिए गए हैं—अपने परिवार के साथ आजकल लखनऊ ही हैं। पढकर मुझे अच्छा ही लगा था। उसके परिवार का हाल पढकर मन मे कही चुभन भी नही हुई, कही कुछ ठहराव भी नही आया। जैसे दिनेश मेरे अस्तित्व से सदैव भिन्न था। जैसे एक मित्र अपने मित्र की सम्पन्नता का हाल सुनकर प्रसन्न होता है, वैसा ही आह्लाद मेरे रोम-रोम को छू गया था। मुझे यह जानकर बहुत शान्ति मिलती है कि अब मेरी मनोदशा आठ वर्ष पहले जैसी लाजवन्ती जैसी छुई-

मुई नही है। जो सत्य है, वह मेरे मन ने वर्षों की चेष्टा के उपरान्त ग्रहण कर लिया है।

दिन बीतते देर नही लगती। जाडे के दिन फिर आ गए हैं। बड़े दादा को यहा आए तीन बरस होने लगे हैं। छ महीने हुए उनकी बदली दिल्ली के सी० आई० डी० विभाग मे हो गई है, इसलिए अभी और दो-तीन वर्ष यही रहने की सम्भावना है। इस बीच मैं कानपुर तो गई ही नही, क्योकि सोम भैया आकर स्वय ही मिल जाते हैं। छोटी भाभी कामनी के पास लखनऊ गई थी, बड़ी भाभी साथ थी। दस-पन्द्रह दिन मे ही हम लोग लौट आए थे। दिल्ली मे रहना अच्छा लगने लगा है। यह ऐसा स्थान ही है, जहां जो कोई आता है उसे यह स्थान पसन्द आ जाता है। हम लोग रोज़ तो कहीं घूमने जाती नही हैं, परन्तु जब ख़ास-खास अवसर आते हैं—जैसे २६ जनवरी की परेड और अमेरिका के राष्ट्रपति आइज़नहावर का भारत-आगमन, रूस के प्रधानमत्री श्री ख्रु्श्चेव का दिल्ली मे स्वागत इत्यादि—वडे दादा साझ को घुमाने ले जाते हैं। उस समय दिल्ली के कुछ विभाग और नई दिल्ली की सडकें ऐसी सजी रहती हैं जैसे किसी विवाह का मण्डप। २६ जनवरी की रात को राष्ट्रपति भवन, सचिवालय और अन्य सरकारी इमारतो पर रोशनी देखने के लिए असंख्य जनसमूह उमड पड़ते हैं—वह दृश्य ही इतना लुभावना होता है कि जो कोई भी देखता है, विमोहित, विजड़ित देखता ही रहता है। उस असख्य जनसमूह के मध्य मार्ग मिलना तो असम्भव ही होता है, किराये की सवारी भी नही मिल पाती। तव वड़े दादा भाभी को सुनाकर अवश्य कह देते हैं, "भाग मनाओ वेगम कि इतने वडे आदमी की पत्नी बनने का सौभाग्य मिला है। अपनी गाडी आज न रहती तो ये दृश्य भी देखने को नही मिलते।"

भाभी सुनकर चुप रह जाती हैं, जैसे वोलना उन्होने सीखा ही नही है। कई वार सोचती हू, भाभी जैसी पत्नी का मिलना अवश्य ही वड़े दादा के किसी पहले समय के सुकर्मों का फल है। जैसे सूर्य की सार्थकता उसकी

ज्योति को लेकर है ; किन्तु ज्योति सूर्य का अंग नही है, उसका अलकार, आभूपण भी नही है, बल्कि सुकृति के खेत मे कला उसकी आत्मा का उल्लास है। भाभी के पास भी उनके पिछले जन्मो की सुकृति के फलस्वरूप सह जाने की एक अद्भुत क्षमता है। हो सकता है, इसीलिए भाभी का यह जन्म सार्थक हो गया है, नही तो सिवाय कलह के कुछ न रहता।

माघ की ठिठुरती रातें और सिकुडते दिन आ गए हैं। दिल्ली में जाडा भी कानपुर से कुछ अधिक पडता है। कभी-कभी तो इतनी धुव और कोहरा छाया रहता है कि दिनकर के दर्शन ग्यारह-बारह बजे के लगभग होते हैं। कभी-कभी वे भी नही होते, दिन-भर बदली ही छाई रहती है। आज भी आसमान बादलो से घिरा है—भाभी अपने मायके गई हैं, दो-चार दिन के लिए। बडे दादा उन्हे पहुचाने गए तो अभी लौटे नही। मैं और दीपा गोल कमरे में अगीठी जलवाकर बैठे हैं। दीपा अपनी गुड़िया लिए है और मैं बडे दादा का स्वेटर बुन रही हूं। तभी शान्ता आ गई। हाथ मे नाखून बराबर करने की रेती लिए है, बैठते ही रेती चलानी आरम्भ कर दी।

मैंने पूछा, "क्यो, आज कही पार्टी मे जाना है जो सजे हुए नाखून फिर से सवारे जा रहे हैं?"

वह अपने काम मे मस्त बोली, "नही, पार्टी मे नही जाना, परन्तु नाखूनो पर दूसरे रग का पालिश करूगी, सोचा दो क्षण रेती से भी ठीक कर ही लू।"

"कितने नखरे मे रहती हो! रात-दिन अपने मे मस्त। माथुर साहब का ख्याल क्या करती होगी तुम!"

शान्ता ने मुह बनाते हुए कहा, "वाह मेरी गुड़िया, जैसे जानती नहीं हो, पुरुषो को वस मे रखने का बडा सुगम तरीका है कि बस नखरे मे रहो! यदि मैं नखरे नही करू तो माथुर साहब किसी दिन किसी दूसरी की ओर झुक जाएगे, उसके नाज उठाएगे। पुरुष चाहता क्या है—स्त्री नाज करे, वह उसे झेले।"

मैंने कुछ चिढकर कहा, "बस, मुझे तुम्हारी ये ऐंग्लो-इडियन युवतियों-

वाली युक्तिया कुछ जचती नही हैं। जहां प्रेम है, वहा अविश्वास कैसा ?"

शान्ता ने समझाते हुए कहा, "प्रेम मे अविश्वास नही है, यह मैं मानती हू, परन्तु पुरुष की मधुकर सरीखी आदत का तुम क्या करोगी ? इन लोगों का प्रकृति ने स्वभाव ही ऐसा बनाया है कि नित नया आकर्षण होना चाहिए। यदि वह 'नित नया' तुम स्वय घर मे ही उपलब्ध कर दोगी तो फिर किसी प्रकार की कोई आशका नही।"

मैं कुछ कहने ही जा रही थी कि बाहर से कॉल-बेल बज उठी। बिरजू, हमारा रसोइया, भागकर देखने गया है। फिर भीतर जाकर मुझसे बोला, "बाहर कोई मेहता साहब आए हैं।"

मैं जाकर मेहता साहब को भीतर ले आई। स्प्रिगवाले दीवान पर बैठते हुए उन्होने पूछा, "क्या टडन साहब घर पर नही है ?"

"नही, भाभी के साथ उनकी मा के गए हैं, अभी लौट आएगे।" शान्ता की ओर देखते हुए मैंने कहा, "श्रीमती माथुर हैं, मेरी सखी; श्री मेहता, बडे दादा के मित्र।"

मैंने परिचय करवा दिया।

मेहता साहब को जाने क्या सूझी, बोले, "बड़े दादा का ही क्यो—आपका मित्र नही क्या ?"

बात जो ठीक है वही कही गई है। ठीक ही तो है, मुझे कहना चाहिए था हम लोगो के मित्र, भूल हो गई। न जाने बार-बार मुझसे मेहता साहब के सामने भूल क्यो हो जाती है ! जो कहना चाहिए वह न कहकर मैं कुछ दूसरा ही कह जाती हू। शान्ता ने प्रतिकार मे नमस्कार किया, और एक शरारत-भरी मुस्कान लिए उठकर चली गई। मैं टालती रह गई, पर वह क्यो मानने लगी—चली ही गई।

मेहता साहब के सामने अकेली पड जाने से उनके प्रति जो मन मे सकोच है, पुन: जाग्रत् होकर रह-रहकर चेतावनी दे रहा है—हो सकता है कुछ पूछ ही बैठे। मैं उठकर जाने लगी तो उन्होने रोक लिया, "बैठिए न, कहा जा रही हैं ?"

"चाय बना लाऊ आपके लिए।"

"हा, चाय मैं पी लूगा, रसोइया वना देगा, आप बैठिए न।"

दीपा, जो अभी तक मेहता साहब की गोद मे खेल रही थी, बोल उठी, "बैतो ल वूआ, अकल छे वात कलो!" दीपा ने साडी का छोर पकडकर खीचना आरम्भ कर दिया। मैंने जिस किसी तरह पल्ला छुड़ाया और भीतर जाकर चाय के लिए बोल आई। लौटकर देखा—दीपा तुतलाते शब्दो में गा रही है—"घुघलू वाघ मीला नाची ले, नाची ले!" गाते-गाते थोडा नाच भी रही है, यह देखकर मुझे उसके दिखावेपन की भावना पर हसी आ गई। बच्चों को कुछ थोडा भी नया आ जाए तो जिस किसीके सामने तैयार रहते हैं।

मेहता साहब ने हसते हुए कहा, "दीपा रानी, किसने सिखाया गाना?"

दीपा ने बडे गर्व से कहा, "बुआ से…।"

मेहता साहब ने अनजान बनते हुए कहा, "ओहो, तब तो तुम्हारी बुआ को भी गाना आता होगा?"

"आ' आप छुलेगे?"

मैंने डाट दिया, "चुप दीपा, ज्यादा नही बोलते!" डाट खाकर वह चुप हो गई। गुडिया उठाकर खेलने लगी।

दो क्षण मौन रहा। मैं नीचे देख रही हू और मेहता साहब मेरी ओर। बहुत गम्भीर स्वर मे बोले, "और कैसा हाल है?"

"सब ठीक है।" छोटे-से प्रश्न का छोटा-सा उत्तर।

"सितार और वायलिन का अभ्यास तो करती हैं न?" पूछा उन्होने।

"हा, कभी-कभी। कामनी भाभी और अर्चना कैसी हैं? डाक्टर भैया कैसे हैं?" मैंने बात का रुख बदल दिया।

"हा, ठीक याद आया, डाक्टर साहब की बदली बरेली हो गई है, आपकी भाभी और उनकी बच्ची शायद थोड़े दिनो तक यहा आएगी।"

बिरजू चाय रख आया। हम दोनो चाय पीने लगे हैं। उन्होने ही कहा, "मेरी भी बदली हो गई है—घर भी मुझे मिल गया है वेस्ट

पटेलनगर। आज छुट्टी है, टडन साहव को मिलने चला आया।"

मैं फिर भी चुप हूं—क्या कहू ? इस वात का उत्तर देना कोई आवश्यक नही है। नई वात मुझे कोई सूझ नही रही। सच तो यह है कि मैं इतना अधिक कही आती-जाती भी नही, एकाएक मुझसे किसी-से वाते करते भी नही वनता।

"आप वहुत चुप रहती हैं।"

"नही, कुछ खास नही।"

"नही, चुप तो आप रहती हैं सुनीताजी, यह तो मैं झासी से देखता आ रहा हूं। यह जीवन यू वेकार सड जाने के लिए नही है—आज के युग मे जव इस प्रकृति का कण-कण कर्मशील है, आपको भी कुछ करना चाहिए। यू कव तक अपनी आत्मा का दमन करती रहेगी ?"

"काम तो मैं भी करना चाहती हू, परन्तु वडे दादा की आज्ञा के विना यह कैसे होगा ?"

"वह तो तुम्हे करना ही होगा। काम···इतनी वड़ी दिल्ली मे काम की कोई कमी नही। मैं काम दिलवाऊगा। पर हा, करना तो वह आपको ही है। साहस करिए, टडन साहव से फिर वात कर लीजिए···मेरा उनसे कहना ठीक नही, नही तो मैं स्वय उनसे कुछ वात करता।"

न जाने कैसे साहस का सचार मेरे मन मे हो आया कि मैंने कह दिया, "हा···आप काम वताइए, मैं जाऊंगी···काम करूगी।"

मेरी इस नई भावना से मेहता साहव के मन पर क्या प्रतिक्रिया हुई, यह तो मैं जान नही पाई, परन्तु प्रत्यक्ष मे वे पहले जैसे गम्भीर नही हैं। अनजाने मे ही उनके मुख पर मुस्कान की छाप पड गई है। धीरे से बोले .

"दिल्ली का पानी रग ले आया है।"

मैं खिलखिलाकर हस दी।

१३

कामनी भाभी और उनकी बच्ची अर्चना आई हैं। कुछ दिन रहकर वे अपनी मा के यहा गुरदासपुर चली जाएगी। इन दिनो घर मे ऐसा लगता है जैसे कोई उत्सव हो। दीपा, बिट्टू और अर्चना खूब खेलते हैं, दोनो भाभिया और मैं दिन-दिन-भर बाते करते हैं—इधर की हाकते हैं, कुछ उधर की हाकते हैं। रात को जब बड़े दादा और बड़ी भाभी अपने कमरे मे सोने चले जाते हैं तो कामनी भाभी और मेरी बातचीत होती है। कई बार रात के दो बजते हैं, और कई बार तीन।

मैंने कामनी भाभी से चाचीजी का और उनके परिवार का हाल पूछा, क्योंकि चाचीजी का, कुसुम का या गार्गी भाभी का—किसीका भी पत्र अब मेरे पास नही आता है। भाभी ने बताया सब कोई मजे मे हैं, परन्तु चाचीजी का मन कुछ उदास रहने लगा है। वे चाहती हैं कि मैं कानपुर उनके पास ही रहा करू। सुनकर मैंने कामनी भाभी से कहा, "नही भाभी, मैं इस जीवन मे चाची के पास नही लौटकर जा सकती। मुझे वहां जाने को मत कहो।"

भाभी बोली, "नही, मैंने तुम्हे वहा जाने को नही बोला, खाली चाचीजी का कहना बताया है।"

मैंने पूछा, "कुसुम कैसी हो गई है भाभी, कभी पत्र भी नही लिखती।"

भाभी बोली, "मैंने कहा था, 'कुसुम, तुम पत्र क्यो नही भेजती, सुनीता तुम्हे मेरे पत्रो मे बराबर याद करती है।' तो बोली थी, 'चाची, सुनीता जानती है मैं पत्र वहा क्यो नही भेजती।' "

सुनकर सहसा ही मुझे स्मरण हो आया। मैं भी कैसी भुलक्कड़ हू! एक बार बड़ी कठिनता से उसने बड़े दादा से पीछा छुड़ाया है, अब वह यहां

क्यो पत्र देने लगी ?

एक दिन रात की वातचीत के सिलसिले मे कामनी भाभी ने पूछ ही तो लिया, "सुनीता, मेहता के बारे मे फिर सोच लो, लडका वुरा नही है।" मुझे उस दिन दोपहर की एक घटना याद हो आई—इसीलिए मैंने भाभी के शब्दो का कोई उत्तर नही दिया। उसी घटना के वारे मे सोचती रह गई।

कामनी भाभी ने मेहता को टेलीफोन कर समय ले लिया था कि शनिवार को वे हम सबको कुतुवमीनार ले जाएगे। छोटी भाभी ने कुतुब-मीनार देखी भी नही थी और वे जब से दिल्ली मे आई थी, मेहता से उनकी भेट भी नही हुई थी। वडे दादा तो काम मे इतने व्यस्त रहते थे कि छोटी भाभी जिस दिन आई थी, उसी दिन उन्होने कहा था, "कामनी, तुम ऐसे समय पर आई हो, जव मुझे वर्ष मे सबसे अधिक काम होता है, मैं यदि तुम्हे घुमा-फिरा न सकू तो वुरा न मानना। सुनीता और शोभा को लेकर घूम आना।" इसीलिए हम तीनो उन दिनो खूब घूमते थे। सच वात तो यह है कि बडे दादा वडी भाभी को तो अधिक घुमाने ले जाते नही—कामनी भाभी की कौन वात है ! किन्तु वडी भाभी कामनी भाभी का पूरा-पूरा ध्यान रखती थीं। जहा भी कहा वे उन्हे ले गईं।

हा, तो उस दिन हम लोग कुतुवमीनार गए थे, वडे दादा मोटर मे हम सवको वहा पहुचाकर चले आए थे। मेहता वहा पहले से ही थे ! उन्होंने कहा भी, "जितेन्द्र, रुक जाओ, ऐसा भी क्या काम है !" परन्तु वडे दादा ने कहा था, "आज तुम ही घुमाओ इन लोगों को। एक दिन मेरा भी थोडा काम करो।" कहकर वे चले गए थे।

कुतुव के वडे-बड़े घास के मैदानो मे से एक सुन्दर-सा स्थल चुनकर, जिसके पास रगविरगे फूलो की क्यारी और एक वहुत वडा नीम का पेड़ भी था, उसपर वडी दरी विछा दी गई। वच्चे वहुत प्रसन्न थे, भाभियां भी उन्हे प्रसन्न देख खूब स्नेह-भरी दृष्टि से मुस्करा रही थी। मेहता अकेले पुरुष रह गए थे, इसीलिए शायद उन्हे कुछ अजीव अटपटा-सा लग रहा

था। कभी खडे हो जाते, कभी सामने देख लेते, कभी फिर बैठ जाते। मुझे उनकी परेशानी खूब समझ आ रही थी। बडे दादा तो उनपर छोडकर स्वय छुट्टी पा गए थे, पर मेहता का हाल देख-देखकर मुझे हसी आ रही थी। देखकर कामनी भाभी ने पूछा था, "हस क्यो रही हो सुनीता ? कुछ हम भी तो सुनें !" मैंने उनके पास जाकर धीरे से कहा, "मेहता की हालत देखने योग्य है। हम तीन-तीन स्त्रिया है, वह अकेला पुरुष। उसे अच्छा नही लग रहा होगा। तुम उन्हे भी भेज दो, हम लोग अकेले ही घूम-फिर लेगे।" कामनी भाभी बोली थी, "क्यो मेहता साहब, आप उधर ही क्यो खड़े है, इधर आइए, कुछ गप-शप होगी।"

मेहता बैठते हुए बोले, "एक बात है भाभी। आप लोगो के व्याह के पहले से मैं इस परिवार मे आता-जाता हू, परन्तु आप लोग मुझे अभी तक मेहता साहब बोलती हैं···क्या चेतन ठीक नही आपके लिए ?"

बडी भाभी बोली, "हा, हा, क्यो नही, हम लोग आपको आज से चेतनजी ही कहकर पुकारेगे।"

कामनी भाभी बोली, "चलो न सुनीता, हम लोग कुतुब के ऊपर चढेंगे। शोभा दीदी बच्चो को देखेंगी। चेतनजी, आप भी चलिए।"

बड़ी भाभी ने कहा, "जाओ, देख आओ, तब तक मैं दो-चार ग्रामोफोन पर रिकार्ड बजाए लेती हू।"

मेहता और भाभी आगे-आगे बढ गए, मैं कुछ पीछे रह गई। भाभी के हाथ मे टार्च भी थी, क्योकि कुतुब के भीतर इतना उजाला नही है—घुप अधेरा भी नही है, परन्तु भाभी की सूझ ही ऐसी है कि वे छोटी से छोटी बात भी कभी नही भूलती। मीनार के दरवाज़े पर जाकर वे लोग रुक गए, क्योकि अकेले प्राणी को पहरेदार ऊपर चढ़ने से मना कर देता है। मेरे पहुचने पर हम लोग भीतर घुसे और सीढिया चढने लगे। मैं आगे भी दो बार ऊपर चढ चुकी थी। जब भी मैं कभी कुतुबमीनार गई हू, मुझे सीढिया चढते समय उस अधेरे मे रज़िया बेगम के जीवन की घटनाए याद आ जाती हैं। कुतुब की लाट के साथ रज़िया का कोई

सम्बन्ध नही, सिवाय इसके कि वह भी उसीकी वशज थी, जिसने यह लाट बनवानी आरम्भ की थी। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसका निर्माण आरम्भ करवाया था और अल्तमश ने इसे पूरा किया। परन्तु न जाने क्यो, मुझे रज़िया की और उसके काले हब्शी प्रेमी की याद हो आती है। बेचारी को निराशा ही हाथ लगी थी जीवन मे। जब बडी-बडी सम्राज्ञियो को भी कई बार जीवन मे निराशा हुई थी, तो मैं किस खेत की मूली हू ! हा, ठीक ही तो है, मेरा अस्तित्व ही क्या है ? सीढिया चढती जाती थी और यही सोच रही थी कि पहली मज़िल खत्म हो गई। प्रत्येक मज़िल के खत्म होने पर एक छोटी-सी रेलिंग बनी है मीनार के चारो ओर, जहा से चढनेवाले बैठकर समूची दिल्ली का दृश्य देख सकते हैं। दो क्षण आराम भी कर सकते हैं, खुली हवा मे सास भी ले सकते हैं। मैंने देखा, भाभी और मेहता वहा नही थे, शायद वे लोग बहुत आगे बढ गए थे। पीछे छूट गई जानकर मैंने भी पाव जल्दी-जल्दी आगे बढाए। बहुत लोग चढ रहे थे, बहुत उतर रहे थे। पर आज इतनी भीड नही थी क्योकि छुट्टी का दिन नही था। रविवार या दूसरी किसी छुट्टी के दिन तो इतनी भीड हो जाती है कि चढ़ने-उतरनेवालो के धक्के भी लगने लगते हैं। इसीलिए हम लोगो ने शनिवार चुना था। धीरे-धीरे दूसरी, फिर तीसरी, चौथी···और फिर पाचवी मज़िल पर मुझे कामनी भाभी और मेहता मिले थे। मैंने उलाहने-भरे स्वर मे कहा, "कितनी मस्ती मे भाभी आप चढ रही थी, मैं पीछे छूट गई, पर मेरे लिए प्रतीक्षा भी नही की !"

"सच सुनीता, गलती हो गई—चेतनजी कुछ बात बताने लगे, बस, उसी धुन मे चढते चले आए।"

मेहता बोले, "बात तो बीच-बीच मे छोड़नी पडती थी क्योकि चढने पर कुछ सांस फूलने लगती है। मुझे तो ध्यान था कि आप पीछे छूट गई है, परन्तु···"

तभी कामनी भाभी बोली, "देखो, शोभा दीदी और बच्चे नीचे बैठे हुए घास के मैदान पर, कितने छोटे-छोटे प्रतीत हो रहे हैं ! बच्चे तो एकदम

बिन्दु ही लग रहे हैं।"

भाभी पहली बार कुतुब के ऊपर से आसपास का दृश्य देख रही थी इसीलिए बहुत मग्न थी, बहुत प्रसन्न थी। कुछ देर चुपचाप हम लोग देखते रहे। कुतुब के पास ही पीली मिट्टी की खदान है···काम करते हुए मजदूर, आसपास की पुरानी खडहर जैसी रह गई इमारतें, सब छोटे-छोटे बौने मानवो की सृष्टि के चित्र-सा लग रहा था।

मेहता नीचे चलने को प्रस्तुत हुए तो भाभी ने अधिक आग्रह नही किया। वे भी चलने लगी, सीढिया उतरने लगी। स्वभाव से ही कामनी भाभी चचल और फुर्तीली हैं। उतरने मे तो इतना परिश्रम भी नही करना पड़ता, धडाधड उतरने लगी थी। बहुत दूर निकल गई थी—मैंने आवाज भी दी, पर उन्होने कोई उत्तर नही दिया था। मेहता शायद पीछे ही थे, उन्होने कहा, "मैं पीछे हू, घबराइए नही···बढती चलिए।"

उतरते समय फिर हम, जो पहली मजिल पडी, उसकी रेलिंग पर गए। भाभी वहा भी नही थी। नीचे की ओर फिर बढी। अभी दो-चार सीढिया ही उतरी थी कि पता नही साडी पाव मे फस गई कि क्या हुआ, मैं फिसल गई थी, और नीचे चार-पाच सीढिया गिर गई होती कि तभी मेहता ने बढ़कर अपनी बाहो से सभाल लिया। दो क्षण वैसे ही बीत गए थे। मुझे गिरने के आघात के डर से जब होश आया तो मैंने छुडाने की चेष्टा की, मेहता ने छोड दिया, परन्तु एक बार झकझोरकर कहा, "सभलकर चलना सीखिए, पग-पग पर ठोकर खाना ठीक नही।" तब मैं धीरे-धीरे उतरने लगी थी। मेहता मेरे पीछे-पीछे थे। मेरे पाव काप रहे थे। आज मैंने फिर मेहता की आखो मे प्रेम की एक ऐसी झलक देखी थी जो मृत प्राण मे भी जीवन फूक दे। जिसे देखकर मरुस्थल मे हरीतिमा का आभास हो आए।

कैसा मूक प्रेम है, जो प्रतिदान भी नही चाहता! मेहता चाहते तो उस समय कुछ बोल सकते थे, कुछ कर सकते थे; वह घड़ी पूर्णतया उनके बस मे थी। मैं तो अकस्मात् गिरने से अपने शरीर व मस्तिष्क दोनो का

सन्तुलन खो बैठी थी।

भाभी शायद मेरी ओर से कोई उत्तर न पाकर सो गई है। मुझे नीद नही है। कब तक सोचती रहूगी`` सोचने को अभी पहाड-सा जीवन पडा है।

आज सुबह कामनी भाभी ने बडी भाभी से फिर कहा होगा कुछ उस बारे मे, मैं कुछ नही जानती। इतना ही जानती हू कि उस दिन साझ को दादा घर जल्दी लौट आए। अपने कमरे मे ही उन्होने चाय और नाश्ता मगवा लिया है। मैं और कामनी भाभी बाहर के बरामदे मे अपनी-अपनी सलाइया लेकर स्वेटर बुन रही है। पहले तो बडी भाभी की कुछ कहने की आवाज़ सुनाई पडी, फिर बडे दादा का चिरपरिचित कर्कश स्वर कानो मे पडा, "कामनी से कह दो, वह ही व्याह रचा दे सुनीता का, वह भी तो भाभी है ``मुझसे बार-बार क्यो कह रही हो ? कान खोलकर सुन लो `` मैं सुनीता का व्याह नही करूगा`` व्याह करने का अर्थ होगा, पचास हज़ार के लगभग रुपये के ऊपर पानी गिराना। जब तक सुनीता को मालूम नही था, मैंने उसका व्याह करना चाहा था`` पर अब जान-बूझकर नुकसान नही कर सकता।"

इसके उपरान्त बड़ी भाभी का स्वर फिर मैंने नही सुना। मुझे शान्ता की बात रह-रहकर कचोटने लगी कि 'तुम्हारे बडे दादा की नजर तुम्हारे पैसे पर लगी है।' मेरा व्याह बडे दादा नही करना चाहते, इस बात का दु ख मुझे नही है। परन्तु इन लोगो के मन मे मेरे पैसे के लिए क्या-क्या भावनाए है, वह मेरे सामने आ गया है। मैंने कामनी भाभी की ओर देखा—उन्होने बुनना बन्द कर दिया है, मौन रहकर कुछ सोच रही हैं। बडे दादा का मन मेरे प्रति भी इतना प्रपच पाल सकता है, इतना धोखा रख सकता है। मैं जो उनकी सगी छोटी बहिन हू, मैं जो बचपन से अनाथ हू जिसे उन्होने छुटपन से बडा किया है। क्या पैसा इस ससार मे बहुत कुछ है``` बहुत बडी वस्तु है ``स्नेह के नाते, प्रेम के बन्धन क्या सब ही छोटे है ``मिथ्या है ``यथार्थ है कुछ तो वह केवल पैसा!

मैं उठकर अपने कमरे मे चली आई। मन के भीतर रह-रहकर क्रोध व अपमान की ज्वाला के उबाल आ रहे हैं। पर आसू हैं कि निकलते ही नही। बचपन से रोते-रोते, आखें भी रीती हो आई हैं···मन भी चिकने घडे-सा हो गया है। बड़े दादा के मन का रहस्य जानकर भी मुझे वेदना नही हो रही है। मुझे अपने पर ही आश्चर्य हुआ। दु ख तो हुआ है थोडा-सा, पर और तो कुछ भी नही, यहा तक कि घृणा की एक सिहरन भी मन मे नही हो रही है। बडे दादा ने कहा है, 'सुनीता जब पैसे को लेकर अनभिज्ञ थी तब मैंने ब्याह रचाना चाहा था, पर अब जान-बूझकर नुकसान नही कर सकता।' कितना छल भरा है बडे दादा के भीतर! चाचाजी से सुना था कि पिताजी ने कैश-सर्टिफिकेट लिए थे मेरे नाम पर। अब जब जान गई हू तो हस्ताक्षर करने से पहले पूछ सकती हू कि किसलिए रुपये चाहिए। पर जब नही जानती थी तब भूल से भी हस्ताक्षर कर सकती थी। योजना बडी थी—बडे दादा पर खेद इसी बात का है कि वह कट गई।

आज जान गई हू कि मेरे पैसे को लेकर ही बडे दादा सदैव मुझे अपने पास रखते आए है और रख रहे हैं, तो मन एक असहनीय बोझ से भर गया है—स्नेह के नाते नही, पैसे के नाते से भाई के घर मे रह रही हू! क्या प्रत्येक परिवार मे ऐसा ही होता है···क्या सारा ससार पैसे की दृष्टि से देखता है? हा, होता ही होगा। मानव तो सब स्थान पर मानव ही है। मेरा मन अपने प्रति ही सहानुभूति से भर उठा। मैंने मन को ढाढस बधाया, 'निराश क्यो होता है, निरुत्साहित क्यो होता है, कौन है जो तुम्हे सबल देगा! उठ और हिम्मत बाध—जो भी मार्ग मे आए उसे पार कर जा। उपेक्षा, अवसाद और प्रपंच तुम्हे विक्षिप्त कर देगें।'

उस रात मैंने मन ही मन निश्चय किया कि मेहता कही काम न भी दिलाए तो भी मैं स्वय घूम-फिरकर काम ढूढ लूगी। पर अब और इस घर मे नही रहूगी।

आज बारह बजे के लगभग कामनी भाभी को जाना है। दादा के

दफ्तर जाने के पहले वे उनके कमरे मे गई तो फिर जाने कैसी बातें उन लोगो मे हुईं कि कामनी भाभी जब बाहर आईं तो चेहरे पर जो कल शाम की घटना से अवसाद के बादल छाए हुए थे वे मिट चुके है। वही हसता हुआ चंचल चेहरा है। मैंने मन ही मन बहुत सोचा, परन्तु जान न पाई कि इस बीच ऐसा क्या घटा है, जिससे भाभी इतनी अधिक फिर प्रसन्न हो गई हैं।

ग्यारह के लगभग बडे दादा आए और कामनी भाभी को स्टेशन ले गए। बड़ी भाभी भी गई है, मैंने दीपा, बिट्टू को भी साथ कर दिया है··· जान-बूझकर मैं घर पर रह गई हू—अकेली।

उन लोगो के चले जाने के तुरन्त बाद मैंने मेहता को टेलीफोन किया। जीवन मे पहला अवसर है कि मैं किसी पुरुप को निजी काम के लिए टेलीफोन कर रही हू। हृदय आशका से धडक रहा है, कही मेहता आफिस मे न हो तब ? पर उधर से कुछ ही क्षणो मे आवाज़ आई—"मेहता दिस साइड।" मेरी जान मे जान आई।

"मैं सुनीता बोल रही हू।"

"ओह नमस्कार, कहिए, आज आपने कैसे कृपा की !"

"आपको याद होगा·········मेरा मतलब कि मेरे लिए कुछ काम मिला·········?"

"ओह हा, वह तो आज मैं स्वय उधर आनेवाला था···करोलबाग मे ही एक हायर सेकण्डरी गवर्नमेण्ट स्कूल है। उसकी प्रिंसीपल मेरी पुरानी परिचित हैं। उनके पास सगीत-शिक्षिका की जगह खाली है··· हो सके तो आप आज ही उनके पास हो आइए, मैं टेलीफोन किए देता हू।"

"हा, परन्तु करोलबाग मे कहां पर वह स्कूल है ?"

"गुरुद्वारा रोड बस-स्टैण्ड के पास ही है···बडा-सा बोर्ड लगा है, प्रिंसीपल का नाम है—श्रीमती सत्या कुमार।"

"हू, तो मैं जाती हू, अभी-अभी आप फोन कर दीजिए।"

फोन रखकर मुझे याद आया कि घबराहट मे मैंने धन्यवाद भी नहीं

कहा। शीघ्रता से कपडे बदलकर, घर के लिए विरजू को ताकीद कर मैं बोली, "भाभी आ जाए तो कहना, मैं शान्ता के साथ बाहर गई हूं, जल्दी लौट आऊगी।"

शान्ता को लेकर मैं स्कूल पहुच गई हू। पहला दिन है, अकेली निकलने का साहस ही नही हुआ। मैं तो अपनी सगीत और बी०ए० की डिग्री भी भूल गई होती, परन्तु शान्ता ने याद दिला दिया था। प्रिंसीपल श्रीमती कुमार एक अधेड आयु की सभ्रान्त महिला दिखाई दी। एक-दो प्रश्न पूछकर उन्होने मुझे दूसरे दिन से स्कूल आने के लिए कह दिया है। कल से मैं स्कूल नियमित रूप से जाने लगूगी। दो सौ रुपये के लगभग मिलेंगे···पर इससे क्या, मेरी स्वय की एक आय तो है—एक सबल तो है।

इधर आठ दिनो से मैं स्कूल जा रही हू, परन्तु बडे दादा को अभी तक मालूम नही हुआ। कुछ दिन तक तो वे दिल्ली से ही बाहर थे, फिर बीच मे दो छुट्टिया पड गई थी। आज सोमवार है···मुझे तो सवेरे साढे सात बजे ही स्कूल पहुचना है। भाभी का चेहरा उतरा-उतरा है। उन्हे किसी भी क्षण घर मे मेरी नौकरी करने को लेकर तूफान आ जाने की सम्भावना है। वे न मुझे कुछ कह पाती है और न बडे दादा को। फिर भी जिस किसी प्रकार मैं तैयार होकर शीघ्रता से घर से बाहर आ गई हू। अभी तो स्कूल पहुचना बहुत आवश्यक है, आकर निबट लूगी। घर से कुछ ही दूरी पर बस-स्टैण्ड है, जाते ही मुझे बस मिल गई। मैं अपनी ही धुन मे सोचती-विचारती स्कूल भी पहुच गई। 'ब्रेक' मे जब अध्यापिकाओ के कामन रूम मे आई, मिस नागपाल इतिहास की अध्यापिका मेरे पीछे ही पड गई है, पूछ रही है, "बताओ, अवश्य ही कोई बात है आज सुनीता, तुम्हारा चेहरा उड़ा-उड़ा लग रहा है।" कहकर वह कुटिलतापूर्ण मुस्करा दी।

इधर स्कूल मे आकर भी मैंने देखा है, लोग दूसरो की गति-विधि मे अधिक शौक रखते हैं।

"कुछ भी तो नही ।"

"क्या तुम्हारे बॉय-फ्रेण्ड से झगडा हो गया है ?"

"तुम क्या कह रही हो···मेरा कोई बॉय-फ्रेण्ड नही है ।"

तब पास मे ही अग्रेजी की शिक्षिका मिस पुरी बैठी हुई बोल उठी, "तुम भी नागपाल, परेशान कर देती हो ! सुनीता अपने भाई के पास रहती है, उसे मेरी और तुम्हारी तरह इतनी स्वच्छन्दता कहा कि वह शाम को बॉय-फ्रेण्ड के साथ घूम सके ! यू नो दी ओल्ड टाइप !"[1]

मैं उन लोगो के पास से उठ आई । मुझे लगा जैसे मैं कभी भी इन लोगो के इशारे, जो ये बात-बात मे आपस मे करती हैं, समझ नही आएगे। मुझे उनका ससार कुछ दूसरा लगा जिससे मैं अनभिज्ञ हू। बॉय-फ्रेण्ड का नाम तो मैंने भी अग्रेजी के उपन्यासो मे बहुत पढा है, तो क्या मिस नागपाल और मिस पुरी भी अग्रेज लोगो की भाति बॉय-फ्रेण्ड रखती हैं ? मुझे उन दोनो ने फिर आन पकड़ा । पुरी बोली, "सुनीता, कभी मेरे होस्टल आना तो तुम्हे रगीन दुनिया दिखाऊगी !"

"कहा है होस्टल ?"

"कर्ज़न रोड पर । वहा सब काम करनेवाली लडकिया ही रहती हैं । मेरे कमरे का नम्बर है १४ । नाम तो तुम्हे मालूम ही है, कमला पुरी ।"

तभी ब्रेक खत्म हो गई, नही तो मालूम नही और कितना बोलती यह कमला पुरी ।

स्कूल खत्म कर मैं दो बजे घर पहुची तो बडे दादा घर पर ही थे, जानकर समझ गई कि आफत अब टाली नही जा सकती । आज इधर या उधर । मैं अभी बाहर बरामदे मे ही थी कि बडे दादा आ गए :

"कहा गई थी ?" वही मन को थर्रा देनेवाला स्वर ।

"स्कूल ।"

"क्या करने ?"

---

१ तुम रूढिवादी लोगों को तो जानती ही हो ।

"पढाने।"

"आज तक काम करने की आवश्यकता नही हुई, अब कैसे हो गई ? नौकरी मिली कैसे ?"

मैं चुप रही।

"हू, तुम क्यो बताने लगी। अब मेहता से साठ-गाठ चल रही है। उसने मुझे स्वय आज बता दिया है कि तुम्हे उसने नौकरी लेकर दी है। पर तुम मुझे क्योकर बताओगी !"

बडे दादा की वाणी सदैव व्यग्य लिए रहती है, परन्तु आज तो सीमा भ पार हो गई है। मैं चुपचाप खडी हू। क्या उत्तर दू ? जिसे मेरे प्रति विश्वास ही नही, उसे कुछ भी बताने से क्या लाभ ?

"तुमने घर से कदम बाहर रखा तो अच्छा नही होगा सुनीता। मैं मेहता को भी देख लूगा। बडा आया शुभचिन्तक !"

अब मैंने मुह खोला, "इसमे मेहता का अपराध नही, मैने नौकरी के लिए स्वय कहा था।"

बडे दादा एक क्षण मौन रहकर मुझे मन ही मन तौलते रहे, फिर अन्तिम बार बोले, "यह घर या नौकरी, दो मे से कुछ भी चुन लो।"

"जी।" कहकर मैं भीतर आ गई।

१४

थोडी देर उपरान्त बडे दादा की मोटर जाने की आवाज़ आई। मैंने उठकर अपना सामान बाधना आरम्भ कर दिया। बीच मे दीपा आई, बोली, "कहा जा लही हो बुआ ?"

"कही नही।"

परन्तु उसे कुछ तसल्ली नही हुई। वह मा को जाकर बुला लाई, "अम्मा, बुआ कही जा लही है, बक्से मे कपड़े लख रही है।" भाभी ने रुआसे कठ से पूछा, "कहा जाओगी सुनीता ?"

"सुना है, कर्ज़न रोड पर लडकियो का एक होस्टल है, वही जा रही हूं।"

भाभी चुप रही। मौन रहकर अपनी आंखो का पानी पोछती रहीं। दीपा की समझ मे कुछ नही आ रहा है इसीलिए कभी वाहर कभी भीतर से सामान ला-लाकर मेरे बक्स मे डाल रही है।

सामान वध गया तो मैं शान्ता से मिलने गई। सुनकर शान्ता तो एक-दम निर्वाक् रह गई। परन्तु दूसरे क्षण परिस्थिति को समझते हुए बोली, "अकेली तुम कहा जाओगी ? तुम्हारा तो कुछ देखा-सुना भी नही है··· चलो, मैं चलकर पहुचा आती हूं।"

हम दोनो घर आए तो भाभी मेरे पलग पर पड़ी फफक-फफककर रो रही हैं। पता नही क्यो, मेरा कलेजा जड़ हो गया है। मैं चाहती हू, रोऊ, घर छोडना कोई सुगम नही, परन्तु रुलाई नही आ रही। मैंने भाभी को उठाया। उन्होने मुझे छाती से लगा लिया। मैंने कहा, "भाभी, तुम तो कभी अधीर नही होती, आज मन इतना क्यो छोटा कर रही हो ?"

"सुनीता, मैं जानती हू आज के बाद मैं तुम्हें चाहकर भी देख नही पाऊगी। मेरे वच्चे और मैं तुम्हारे लिए तरस जाएगे, परन्तु तुम्हारे दादा

के मन को मोम नही बना सकेंगे। तुम्हे वे कभी घर मे नही आने देंगे। सोच लो सुनीता···सोच लो।"

मैंने मन कडा करते हुए कहा, "मुझे जाने दो भाभी, मैंने सोच लिया है···इसीमे मेरी भलाई है। मैं आकर तुम्हे मिल जाया करूगी, उसके लिए तुम चिन्ता व्यर्थ कर रही हो। क्या मैं दीपा और बिट्टू को भुला सकती हू।"

भाभी ने रोना बन्द किया, आखे पोंछी और धीरे से उठकर अपने कमरे मे गई। आईं तो उनके हाथ मे दो सौ रुपये है, गले की दोहरी लम्बी चेन, टाप्स और एक अगूठी। बोली, "लो सुनीता, इसे तुम पास रख लो, तुम्हारे दादा को इन वस्तुओ का पता नही है। इन्हे तुम ले लो, 'न' मत करना।"

वे सब वस्तुए मैंने लेकर पर्स मे डाल ली। 'न' नही कर पाई। 'रुपये तो मुझे चाहिए ही हैं, परन्तु आभूषण बाद मे लौटा दूगी'—सोचकर मैंने रख लिए। दीपा और बिट्टू को प्यार करते हुए आखे छलछला आईं। फिर भी देरी करना तो ठीक नही, इसीलिए जल्दी ही टैक्सी बुलाकर, सामान रखवाकर, शान्ता को लिए मैंने घर छोड दिया।

कर्ज़न रोड आकर कब और कैसे टैक्सी रुकी, कब शान्ता ने सामान उतरवाकर रखा, कब वह कमरा लेकर होस्टल के आफिस से लौटी, मुझे ठीक-ठीक ज्ञान नही। मेरी देह मे प्राण हैं और मैं अपने नये कमरे की एक कुर्सी पर बैठी चुपचाप बार-बार यही सोच रही हू कि आखिर शान्ता का कहना ही सच हुआ कि 'एक न एक दिन तुझे यह घर छोडकर भागना ही पडेगा सुनीता।'

घर से भागना ही पडा।

'सुनीता, आज तूने सारे बन्धन तोड डाले हैं। तेरा अपना कहकर पुकारने के लिए कोई नही रह गया। तू अकेली है···इतने बडे ससार मे अकेली। जिस मार्ग से चलकर आई है, उसपर लौटकर नही जा सकती, उस घर के द्वार सर्वदा के लिए बन्द हो गए है।' मेरी रुलाई जो बहुत अरसे से भीतर घुट रही थी, बाहर आने को छटपटाने लगी। थोड़ा रो लेने

पर, मन हलका हो जाने पर, मैंने स्वय ही मन से कहा, 'पगली, रोती किस-लिए है! उस घर मे रहते हुए भी वह तुम्हारा घर नही था'''वहा तुम्हारा अपना कोई नही था, एक भाभी है पर विवश, इस स्थान मे और उस घर मे क्या अन्तर है!'

मन को धीरज वधा। मैं अपना सामान ठीक करने मे जुट गई।

मुझे होस्टल मे आए पन्द्रह-बीस दिन हो गए हैं। यहां का जीवन भी एक अजीव-सी अनुभूति है जिसका शब्दो मे मैं शायद ही ठीक-ठीक वर्णन कर सकू। न कोई खाने के लिए आपको पूछता है, न आपको किसीको पूछना है। नाश्ते के, खाने के समय निर्धारित हैं'''उस समय की परिधि के भीतर जाएं, तो खाने के कमरे मे आपको कुछ ऐसा खाने को मिल जाएगा, जिसे खाकर जीया जा सकता है। स्वाद या जिह्वा क्या वस्तु है यह शायद इस होस्टलवाले नही जानते, वे तो आपको चार समय कुछ खाने-भर की सामग्री दे देते हैं। कुछ दिन सप्ताह मे दक्षिणभारतीय लडकियो के लिए खाना बनता है—उन दिनो तो और भी कठिनाई हो जाती है, परन्तु जैसे-तैसे अभ्यास हो ही जाएगा ' जीवन मे ये वाते कुछ इतनी महत्त्व नही रखती। परन्तु एक ही प्रचलन मुझे इस होस्टल का भाया नही है। वह यह कि साझ होते न होते, लडकियो के झुण्ड के झुण्ड नाना प्रकार के प्रसाधनो से पुते चेहरे लिए आपको अपने बॉय-फ्रेण्ड (पुरुष मित्र) के साथ वाहर जाते हुए दिखाई देंगे। दस वजते-वजते सव लौटकर आ जाती हैं। कभी-कभी कोई रात के वारह या एक भी वजा देती है '' तव उसकी 'लेट नाइट' नोट कर ली जाती है। पता नही, महीने मे कितनी 'लेट नाइट' एक युवती को मिल सकती है, इस वारे मे मुझे कुछ पता नही, पर हा, जिन युवतियो को वाहर जाने का अवसर अधिक नही मिलता, उनको यहां लोग हेय दृष्टि से देखते हैं।

मैं यह रोज साझ को देखती हू और मेरा शरीर एक घृणित सिहरन से सिहर जाता है। हे भगवान, इन्हे अन्य कोई काम नही, कोई इच्छा नही।

आज की युवती इतनी निर्लज्ज कैसे हो गई ? कई बार एक युवती का बॉय-फ्रेण्ड उसकी सखी युवती की ओर झुक जाता है—तब उन दोनो प्रिय सखियो में भी झगड़ा हो जाता है।

एक बार तो रूजी, मेरी कमरे की साथिन, कह रही थी कि होस्टल की एक लड़की से एक ऐसे पुरुप की मित्रता थी जिसके चार बच्चे थे। वह बच्चो की परवाह किए बिना, प्रत्येक पहली तारीख को उस युवती को ले जाकर एक असली रेशम की साडी ले देता, कभी कोई ज़ेवर ले देता। कोई छ महीने भी नही बीते कि एक दिन उस पुरुष की पत्नी होस्टल मे आकर उस युवती के सामने ज़ार-ज़ार रोई। बोली, "यदि भविष्य मे तुम मेरे पति से कुछ भेंट लोगी तो मैं अपने चारो बच्चो के साथ तुम्हारे कमरे के आगे धरना देकर बैठ जाऊगी।"

कैसा है आज का पुरुष जिसे अपने चार बच्चो के भूखे मुखडे के आगे अपनी प्रेयसी के लिए रेशम की साडी की लालसा है !

कैसी है आज की युवती जिसे अपने शृ गार और मनबहलाव के आगे अपनी बहिन का अस्तित्व मिटाने मे कोई सकोच नही ! !

कई बार सोचती हू कि इस होस्टल की इतनी लडकिया जो समय पुरुषो को लुभाने मे गवाती हैं, उतने समय यदि मे वे कोई कल्याण या समाज-सेवा का काम करें तो कितना सुखकारी होगा ! देश के लिए, समाज के लिए और स्वय इन लोगो के लिए कितना हितकर होगा ! हम अपने ही होस्टल मे एक नाटक सघ खोलकर नाटक कर सकते हैं जिसकी आय से खर्चा तो निकलेगा ही, किसी आश्रम को दान भी दिया जा सकेगा। मनोरंजन तो होगा ही ऐसे भी। और कितने रचनात्मक कार्य कर सकते हैं, जो देश और समाज के लिए लाभप्रद हो। परन्तु यहा तो देखती हू, तन्तु नही तानी ही बिगडी है। रूजी कभी किसी दिन खाली होती है तो शाम को हम दोनों भी थोड़ी देर के लिए घूमने जाती हैं, फिर आकर मैं तो अपने सितार या वायलिन का अभ्यास करती हूं, रूजी पडे-पडे सुनती रहती है।

एक दिन रूजी ने पूछा, "सुनीता, तुम अपने भाई के यहा क्यो नही जाती ?"

"जाऊगी एक दिन।" कहकर उसको तो टाल दिया, परन्तु मन ने मुझे बहुत-बहुत धिक्कारा। इतने दिन आए हो गए पर घर पर मैंने एक दिन भी फोन नही किया था। भाभी तो सच मे घवराती होगी ? दीपा-विट्टू कैसे रहते होंगे मेरे बिना ?...समय देखा तो साढे आठ बजने लगे थे, नही, अभी नहीं, अभी तो बडे दादा घर पर होगे...कल दोपहर स्कूल से आकर करूगी।

दूसरे दिन टेलीफोन किया तो भाभी ने उलाहना दिया, "सुनीता, तुम तो गई क्या, वही की होकर रह गई। तुम्हारे दादा इस समय तो घर पर रहते नही, तुम आओ। दीपा को बुखार है, तुम्हारी रट लगाए है... सुबह अपने पापा से चाटा भी खाया है इसके लिए।"

मैं रुक न सकी...चली ही तो आई। दीपा मुझे देखकर पहले बहुत रोई। फिर गुस्से से छिटककर अलग हो गई।

"जाओ, हम तुम छे लहीं वोलेंगे।"

"क्यो ?"

"तुम छोडकल चली जाती हो। तुम्हाला नाम लेने छे पापा मालते है।"

सुनकर सास गले मे ही अटक गया। सच ही तो है। छोटी-सी जान तुम्हारे लिए कष्ट झेलती है सुनीता। मैंने दीपा को जबरदस्ती खीचकर प्यार किया और बोली, "तुम जल्दी ठीक हो जाओ, फिर मैं तुम्हे एक सुन्दर-सी गुडिया ला दूगी।"

भाभी को देखा, पहले से कुछ दुबली हो रही है। पर मैंने कुछ पूछा भी नही, कहा भी नही। उन्होने अपने ही आप कहा, "तुम्हारे दादा ने मेहता से झगडा कर लिया है...इतने वर्षों की मित्रता पर पानी फेर दिया है।"

मैं अपराधी की नाईं चुप ही रही। क्या उत्तर दू ! भाभी फिर

बोली, "चेतन यहा आया तो तुम्हारे दादा ने उसे बहुत बुरी तरह से फटकारा। पहले तो वह हसता रहा, परन्तु जब तुम्हारे दादा ने कहा कि चले जाओ इस घर से, फिर यहा कभी न आना, तब वह धीरे से उठा और चुपचाप चला गया। एक शब्द भी नही बोला।"

मेरा मन सुनकर दु खी ही हुआ। मेरे कारण इतने दिनो से चली आई मित्रता छिन्न-भिन्न हो गई।

शान्ता से मिलकर चलने लगी तो भाभी फिर बोली, "कभी-कभी इसी प्रकार आ जाया करो सुनीता।"

"हा भाभी!" कहकर मैं चली आई। मन मे कही गहरा विषाद है। दीपा को मैंने छुटपन से पाला-पोसा है, मेरे बिछुडने से वह सबसे अधिक दु खी है···पर मैं कर भी क्या सकती हू!

फिर मेहता को मेरे लिए अपमानित होना पड़ा, अपना प्रिय मित्र छोडना पडा, यह भी तो मुझे लेकर ही घटा। जिस व्यक्ति ने मुझे पाव पर खडा किया, उसीको मेरे लिए लाछना मिली। मैं······मैं······क्या करू कि मेरी यह लज्जा दूर हो? मैं मेहता के एहसानो से इतनी लदी हू कि कभी चुका भी पाऊगी?

जिस दिन से मैंने घर छोड़ा था, मेरी भेंट मेहता से नही हुई··जब होगी तो क्या कह पाऊगी? 'मेरे दादा ने आपका अपमान किया, मैं लज्जित हू······' नही, इतने उडते हुए शब्दो मे कृतज्ञता प्रकट करने के पहले तो मेरा मुह ही बन्द हो जाएगा। तब, तब क्या कहूगी? मुझे तो ढग से बातें करना भी नही आता। तब? तब मैं चुप ही रहूगी।

शाम को होस्टल लौटी हू तो कमरे पर तीन-तीन पत्र रखे है·· खोले और पढे। पत्र हैं तो तीन पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के, परन्तु उनका विषय एक ही है—मेरा घर छोडने पर मेरी भर्त्सना। एक पत्र चाचीजी का है, जो उन तीनो मे से कड़ा है। दूसरा कामनी भाभी का, और तीसरा सोम भैया का। कामनी भाभी से मुझे ऐसे पत्र की आशा नही थी और सोम भैया से तो समर्थन की आशा थी। पत्र पढकर फाड डाले। वे मेरे कटु अतीत से

सम्बन्ध रखते थे, जिसको मैं भुलाने की चेष्टा मे हू। मेरे जीवन के इस नये अध्याय मे दूसरो की इच्छा पर मेरी ही इच्छा हावी होगी। जो दूसरो ने चाहा वह मैं अब तक करती आई हू—परन्तु अब जो मैं चाहूगी वही होगा।

दोपहर दो बजे के लगभग मैं स्कूल से निकलकर बस-स्टैण्ड की ओर जा रही हू कि रास्ते मे ही मेहता मिल गए। मैं ठिठककर खडी हो गई। उन्होने अपने उसी सहज ढग से कहना आरम्भ कर दिया, "कैसा चल रहा है ?"

मुझे हसी आ गई। जब भी कभी मिलो, मेहता के मुह से यह वाक्य अवश्य निकलता है। मैंने कहा, "ठीक ही तो चल रहा है।'

"गुड," फिर कुछ रुकते हुए बोले, "सुनीताजी आपसे एक-दो बातें करनी थी, कहे तो चलें, मेरा घर पास ही है······"

मुझे कुछ सकोच करते देख बोले, "ओह, मैं भूल गया था·· हा, यहा भी एक अच्छा रेस्टोरेण्ट है वही चलिए, यहा खडे-खडे तो बातें करना असम्भव है।"

कहकर वे चलने लगे, मैं भी पीछे-पीछे हो ली। मन मे अत्यन्त लज्जा है, विषाद है कि मेरे ही कारण इन्हे अपमानित भी होना पडा, मित्रता से भी हाथ धोने पडे। भीतर आकर बैठे तो मेहता साहब ने स्वय ही चाय और पनीर की पकौडी का आर्डर दे दिया। मैं चुप बैठी इधर-उधर देखकर उनकी दृष्टि से बचने की चेष्टा कर रही हू। एक अजीब-सी भावना ने मुझे घेर लिया है। एक तो मैं किसी पुरुष के साथ कभी बाहर इस प्रकार से आई नही, और फिर जब जानती हू कि यह पुरुष दूसरा कोई नही वरन् वही है जिसने भाभी से मुझे मागा था···जो पग-पग पर मेरी सहायता करता है···तो क्या मेरा भी कुछ महत्त्व है ? मैं जो सदा-सर्वदा से उपेक्षित-पीडित रही हू। दिनेश ने सहानुभूति दी तो चुपके-चुपके। ससार के सामने तो वह मेरी मित्रता भी स्वीकार न कर सका। कहा मेहता, कहा दिनेश · छी, छी !···मैं भी कैसी तुलना करने बैठ गई !

"हू, तो आपने घर छोडने की सूचना मुझे नही दी।"

मै क्या उत्तर देती। सच ही तो है, सूचना तो मैंने नही दी थी।

"कहा रहती हैं आजकल?"

"कर्ज़न रोड के वीमेन होस्टल मे।"

मेहता दो क्षण मौन रहे, फिर बोले, "कोई कमरा ठीक हो जाए तो आप उसमे जाकर रह सकती है क्या?"

"कहा कमरा ठीक होगा?"

"यही, इसी करोलबाग मे, स्कूल के आसपास ही।"

"पर, मैं एक घर का खर्च कैसे चला पाऊगी? अकेले रही भी कभी नही, वही ठीक है।"

चाय आ गई। मैंने प्याले मे उडेल दी। मेहता एक घूंट पीते हुए बोले, "आप कहती है तो वही ठीक है, परन्तु आप जैसी युवतियो का मन वहा नही लग पाएगा। फिर भले घराने की लड़कियो को वहा रहना शोभा भी नहीं देता।"

सुनकर मैं अवाक् रह गई। तो होस्टल के वातावरण के बारे मे ये भी जानते हैं। लज्जा से मेरा चेहरा झुक गया। करू भी क्या? रहू तो कहा रहू? बडे दादा के पास तो लौट नही सकती। हा···इन्होंने बडे दादा की कोई बात नही की। मैं तो व्यर्थ ही डर रही थी। मैंने ही कहा, "मैं घर गई थी। भाभी ने मुझे बताया था, बड़े दादा ने आपका······"

"छोडिए, उस बात मे कुछ तत्त्व नही है। टडन का क्रोध आज नही तो कल चला जाएगा, आखिर मित्र मित्र को कैसे भूल सकता है!"

मेहता की प्रत्येक बात मे उसका महान व्यक्तित्व झाकता है, जिसको देख-देखकर मन कहता है, इस ससार मे भले पुरुषो की अभी कमी नही है। यह क्या जाने कि बडे दादा का क्रोध भीतर ही भीतर सुलगनेवाली चिनगारी की भाति है।

फिर वे बोले, "आप एक दिन रेडियो स्टेशन जाकर अपना टेस्ट दे आइए, वहा मेरे एक मित्र हैं मिस्टर कपूर। यह उनके नाम पत्र है।"

कहकर उन्होने पत्र मेज पर रख दिया। मैंने पत्र उठा लिया। मेरी आय मे वृद्धि हो सके, इसके लिए मेहता को कितनी चिन्ता है !

मेरी आंखो की कोरो मे पानी ढुलक आया। इतने अपनत्व से तो मेरे घर के किसी व्यक्ति ने भी मेरे साथ व्यवहार नही किया। मेरे लिए इतना करने के उपरान्त भी बदले मे कभी कुछ नही चाहा। कभी प्रतिदान की इच्छा भी नही की। कोई खास काम रहता है तो मिलते हैं, नही तो उसकी भी कभी चेष्टा नही की। कैसी नि स्वार्थ भावना है ! मैंने पहली बार आख उठाकर देखा—मेहता मेरी ओर ही देख रहे थे। मैंने अपनी आखें नियमानुसार फिर घुमा ली, परन्तु इस बार उनकी दृष्टि का आग्रह मन के किसी कोने मे घर कर गया।

मैं उठकर खडी हो गई। मेहता भी उठ गए, हम दोनो मौन रहकर ही सडक पर आ गए। घडी को देखते हुए वे बोले, "अभी तीन ही बजे है, होस्टल लौटकर क्या करिएगा ?"

"कुछ खास काम नही, क्यो ?"

"यूही, मुझे कुछ एक बच्चे के लिए गर्म वस्तुए खरीदनी है, और अपनी भाभी के लिए गर्म शाल। शाल यदि आप अपनी पसन्द से खरीद दे तो अच्छा होगा, क्योकि मैं इस मामले मे एकदम अनाडी हू।"

"ठीक है, मैं चलती हू।"

मेहता ने एक टैक्सी बुलाई और हम लोग चादनीचौक आकर उतर गए। फिर उस गली मे आए जिसमे खासकर ऊनी कपड़े की ही दुकानें हैं। एक कत्थई रग का शाल मैंने पसन्द किया, मेहता ने उसे खरीद लिया। फिर बच्चे के लिए मैंने पूछा तो बोले, "दो बरस का लडका है, मेरे कार्यालय के एक चपरासी का है। कल उसे गर्म कपडो के अभाव के कारण निमोनिया हो गया था, इसीलिए इतने कपडे तो खरीदने ही चाहिए कि फिर ऐसी नौबत न आने पाए।" मैंने दुकानदार से कुछ स्वैटर और गर्म बनियानें दिखाने को कहा।

जब खरीद चुके तो चलते हुए फिर मेहता बोले, "आज सुबह से,

उसीके घर मे था, वैंक भी नही जा सका। डॉक्टर गरीव जानकर अच्छी दवाए भी नही दे रहा था, इसीलिए मैं उतनी देर वही रुका रहा, जितनी देर उसने खतरे के वाहर नही कह दिया। लड़के की मा वहुत रो रही थी, वडा करुणात्मक दृश्य था।"

हम लोग फिर चौक मे आए, टैक्सी की, और मेहता मुझे होस्टल तक पहुचा गए। उतरते हुए मैंने 'नमस्कार' किया। उन्होने हाथ जोड़ लिए और वोले, "आकाशवाणी के केन्द्र में अवश्य जाइएगा।"

टैक्सी चली गई। मैं होस्टल के दरवाज़े की ओर मुड़ आई। सुना तो मैने झासी मे ही था कि मेहता समाज-सेवा बहुत करते हैं, परन्तु उनके मुख से आज ही निकला था। वह भी शायद इसलिए कि तुरन्त यह घटना घटकर चुकी थी। डॉक्टर गरीव चपरासी जानकर भली भाति चिकित्सा नही कर रहा था, यह वात मेहता को उद्विग्न किए हुए थी। शायद उन्हे यह जानकर बहुत धक्का लगेगा कि उनके मित्र, वडे दादा, घर के नौकर के बीमार पडने पर चिकित्सा करवाना पैसे को व्यर्थ फेकना बोलते हैं।

अपने कमरे मे पहुची तो रूजी बैठी थी। मैने पूछा, "आज जल्दी कैसे आ गई?"

"यूही, मन भारी हो रहा था, चली आई।" फिर वोली, "अभी-अभी तुम्हारी भाभी का फोन आया था, तुम्हारे भैया की वदली हो गई है बनारस।"

सुनकर अच्छा ही लगा। थोड़ी देर के लिए तो आया कि बिट्टू और दीपा देखने को भी नही मिलेंगे, परन्तु फिर, मन ने उस भावना को जमने नही दिया। बडे दादा इस दिल्ली से दूर चले जाएगे इसीकी मुझे प्रसन्नता है। इतना तो मैं जानती थी कि एक न एक दिन उन्हे फिर उत्तरप्रदेश लौटना ही है, परन्तु इतनी जल्दी वदली हो जाएगी, इसकी सम्भावना नही थी।

वडे दादा, भाभी और बच्चो को गए छः महीने होने को आए हैं। इन

छ महीनो में भाभी के तीन-चार पत्र आए हैं परन्तु मुझे पत्र भेजने की वहा मनाही है। भाभी ने लिखा था, "मुन्नी, तुम पत्र नही लिखना, कही इनको मालूम हो गया तो तुम जानती ही हो, गजब हो जाएगा। हा, यदि कभी आवश्यकता पडे तो मेरे दिल्लीवाले घर के पते पर सूचना देना।"

वडे दादा ऐसे हो गए हैं। यहा भी जव वे लोग वनारस जानेवाले थे तो मैं मिलने गई थी, तव वड़े दादा ने कहा था, "इस घर मे अव क्या रखा है ! जव घर छोड़कर जा रही थी तव इन वच्चो का ख्याल नहीं आया। कल को स्टेशन पर मत आना। समझो कि अव हम लोग तुम्हारे लिए नही हैं।"

मैं सुनकर उलटे पाव ही लौट आई थी। दीपा मेरी ओर भागी थी, परन्तु वीच मे ही वड़े दादा ने उसे उठा लिया था। मैं और अधिक सह नही पाई थी। सीधे शान्ता के घर आकर दम लिया था। शान्ता पराई होकर मुझे इतनी अच्छी प्रकार समझती है, जानती है; वड़े दादा मेरा खून होकर भी मुझे समझने की कोशिश कभी नही करते। अव तक कई वार शान्ता मुझे अपने घर निमन्त्रण दे चुकी है। दिन निकलते जा रहे हैं, और पहले से कही अच्छे। मैंने कभी वाहर का जगत् देखा नही था, जाना नही था। स्कूल मे सगीत की शिक्षिका के नाते कई अन्य स्थानो के समारोहो से, उत्सवो से निमन्त्रण-पत्र आते रहते हैं। कई अच्छे-अच्छे कलाकारो से मेरी भेंट हुई है। वहुत कुछ मैंने उनसे सीखा भी है। इधर आकाशवाणी से भी मुझे कार्यक्रम मिलता रहता है। वहा भी वहुत लोगो से जान-पहचान हो गई है। मेरे भीतर की झिझक अव वहुत कुछ चली गई है। पहले सदैव मेरे कान मेरी वुराई ही सुना करते थे, परन्तु अव ठीक इसके विपरीत हो रहा है। स्कूल मे, होस्टल मे, आकाशवाणी मे, सव लोग मेरी कला की और उससे भी वढकर मेरे स्वभाव की प्रशसा करते हैं। कभी-कभी मैं सोचती हू, क्या मैं सचमुच ही इस प्रशसा की अधिकारिणी हू ! रूजी तो कई वार मुझे कहती है, "सुनीता, तुम्हे तो नर्स होना चाहिए था। होस्टल मे कोई लड़की वीमार पडती है, तुम

उसकी सेवा मे पहुच जाती हो। सगीत-शिक्षिका का धन्धा छोड़ो और कही नर्स की नौकरी देखो।" मैं मुस्कराकर चुप रह जाती हू। उसे यह नही बता पाती कि रूजी मैंने अपने बचपन मे बहुत अकेलापन देखा है, बहुत कष्ट देखे है, बहुत मानसिक यातनाए झेली हैं, इसीलिए किसी दूसरे की इन सब परिस्थितियों मे थोड़ी भी सहायता करने से मेरे मन को शान्ति मिलती है।

शान्ता तो अभी तक मुझे डाटती है। अभी उस रविवार की बात है मुझे सप्ताहान्त के लिए उसने बुलाया था। शान्ता के पति माथुर साहब कही बाहर गए हुए थे, इसीलिए उसका मन नही लग रहा था। मैं गई थी। खूब अच्छा खाना उसने बना रखा था। खाने के उपरान्त हम दोनो कनाटप्लेस सिनेमा देखने चली गईं। देखा तो वहा मेहता भी थे। मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा, शान्ता शरारत से मुस्करा दी। मैं समझ गई। यह सब इसका ही किया हुआ था। चित्र 'चौदहवी का चाद' चल रहा था। हम दोनो को तो बहुत अच्छा लगा था, परन्तु कह नही सकती मेहता को अच्छा लगा कि नही। जब चित्र समाप्त हुआ तो मेहता बोले, "चलिए, आप लोगो को घर पर पहुचा दू, रात हो गई है।" शान्ता ने इसका क्या उत्तर दिया मैं नही जानती, परन्तु मेहता ने एक स्कूटर रिक्शा ठीक कर दिया। हम लोग चलने लगी तो शान्ता ने कहा, "मेहता साहब, आप कल कही जा रहे हैं?"

"नही, कल तो इतवार है, बहुत दिनो से ठीक से सोया नही, दिन-भर सोऊंगा।"

सुनकर हम दोनो को हसी आ गई। शान्ता बोली, "तो रात को खाने के लिए आइएगा मेरे यहा, सुनीता भी वही है, और भी एक-दो लोगो को मैंने बुलाया है।"

दो क्षण चुप रहने के उपरान्त वे बोले, "खाने की क्या आवश्यकता है, मै वैसे ही आऊंगा—चार-पाच बजे के करीब। खाना नही खाऊंगा।" कहकर चले गए।

रास्ते मे शान्ता बोली, "तुम्हारी तरह मेहता भी खूब ज़िद्दी हैं।"

"मैं ज़िद्दी कहा हूं, जैसा तुम चाहती हो वैसा ही तो करती जाती हू।"

"ज़िद्दी नही तो और क्या हो ! कितनी बार कहा, अब विवाह कर लो, कही ठिकाना ढूढ लो, कब तक स्कूल-मास्टरी करोगी, पर तुम्हारे पल्ले तो कुछ पड़ता ही नही !"

"स्कूल-मास्टरी क्या खराब है ?"

इसपर शान्ता चुप रही थी, बोली नही। परन्तु न जाने क्यो, उसे मेरा यू रहना अच्छा नही लगता। वह चाहती है, मैं विवाह कर लू, गृहस्थी जमा लू। उस दिन उसने कहा था, "तुम्हे सुनीता दिल्ली मे आए चार वर्ष हो गए हैं, सात-आठ महीने से तुम होस्टल मे हो, स्वतन्त्र हो। तुम्हारे स्थान पर कोई अन्य लडकी रहती तो अब तक अपने लिए कोई वर चुन लिया होता।"

मुझे यह सुनकर आश्चर्य भी नही हुआ। दिल्ली जैसे बडे शहर मे अक्सर ऐसा होता है। उसने फिर कहा था, "आज तुम विवाह का मूल्य नही जानती, परन्तु बुढापे मे जब कोई पास नही आएगा, तब रोओगी और मेरी बातें याद करोगी। अभी तो मेहता जैसा युवक चक्कर काटता है, परन्तु पीछे कोई दिनेश भी नही आएगा।"

मैंने डाटकर बोला था, "शान्ता !"

वह बोली थी, "तो और क्या कहू ! जो मन बहला गया उसके लिए जीवन-भर बैठी रहोगी, और जो सर्वस्व न्योछावर कर रहा है उसकी ओर आख नही उठाओगी।"

इस बार मैंने विरोध नही किया था। ठीक ही तो कहती है। तब शान्ता ने कहा था, "अब कल मेहता आएगा तो ढग से बात करना, यू खिचे-खिचे रहने से कोई लाभ नही।"

दूसर दिन सुबह मै और शान्ता इण्डिया गेट घूमने गए थे। गर्मी के दिनो मे प्रातःकालीन ठण्डी समीर मे पानी के आसपास हरी-भरी घास

के मैदान बहुत मनमोहक लगते हैं। वहा बैठने से मस्तिष्क और मन दोनों को ही शीतलता मिलती है। हम लोग भी कुछ देर वहा बैठे रहे थे, फिर धीरे-धीरे उठकर चले आए। न जाने क्यो मन उद्विग्न था। समय कटते ही न कटता था। यू लगता था जैसे अभी-अभी मेरे जीवन मे कुछ अद्भुत घटनेवाला है। कभी इधर आती थी कभी उधर जाती। मेरी यह उद्विग्नता शान्ता से छुपी न रही, पर वह जान-बूझकर कुछ न बोली। अपने काम मे लगी रही। चार बजे तो मै उठकर तैयार हुई—बहुत बरसो के बाद मैने ध्यान से अपने को सवारा था। उजली वायल की लखनवी काम की साडी, उजला चिकन का ब्लाउज़, उजली पाव मे चप्पल। बाहर लॉन मे तैयार होकर आई तो शान्ता ने एक फूल और एक कली मोगरे की तोडकर बालो मे लगा दी, बोली, "अब श्वेत परिधान पहना है तो उसको श्वेत मोगरे के फूल जूडे मे लगाकर पूर्ण कर लो।"

मैने हसकर कहा था, "पाच बजने लगे है, तुम भी जाकर तैयार हो जाओ, जब तक मै यही पर बैठी हू।"

शान्ता चौकते हुए बोली, "नही, नही, ऊपर कुर्सी पर बैठो, साड़ी मे सिलवटें आ जाएगी।"

मै कुर्सी पर ही बैठ गई थी। मेज़ पर पड़ी हुई एक अग्रेज़ी की मासिक पत्रिका के पन्ने उलटने लगी थी। परन्तु मेरे हृदय मे एक अभूतपूर्व आर्द्रता एव सूक्ष्म आनन्द का प्रादुर्भाव हो रहा था। नही जानती थी कि मेरे मानस के अन्तरतम स्तर मे वे कौन-सी भावनाए छिपकर बैठी थी, जो भूलकर भी अपना चित्र नही दिखा रही थी। वह स्निग्धता और मुग्धता जो मेरे लिए एकदम नवीन थी, उसका कारण नही बतलाती थी।

मै अपनी गोपनीय भावनाओ का कारण भी जान नही पाई थी कि पीछे से आहट हुई। सामने मेहता खडे थे। अपनी भावनाओ मे भूल-सी गई थी कि मै आज दिन-भर से इन्हीकी प्रतीक्षा मे थी। जैसेकि सदैव से होता आया है, पहले मेहता ही बोले, "कैसे बैठी थी ?"

"ऐसे ही, आइए बैठिए। शान्ता भीतर है, अभी आती होगी।" वे एक

कुर्सी पर बैठ गए। मैं भी सामने एक कुर्सी पर बैठ गई।

"पिछले बुध को रेडियो मे आपका कार्यक्रम था, बहुत अच्छी वायलिन बजाई थी आपने। अभी तक कानो मे उसके स्वर गूज रहे हैं।"

मैं चुप रही थी।

"क्या अभी कुछ सुना सकती हैं ?"

"शान्ता के पास तो सितार या वायलिन कुछ भी नही।"

"अच्छा रहने दीजिए, फिर कभी सुनेंगे।"

फिर हम दोनो मे मौन छा गया। मैं जानती थी, मेहता कुछ कहना चाहते हैं, मुझे सदैव ही ऐसे लगता है कि जैसे वे कुछ कहने को प्रस्तुत होगे, परन्तु फिर वही चिरप्रिय निस्तब्धता हम दोनो मे छा जाती है। उस दिन फिर मुझे वैसा ही आभास हो रहा था। तभी मेहता बोले थे, "आज गर्मी कुछ ज्यादा है।"

शान्ता भीतर से आ गई थी, "कहिए तो पखा लगवा दू।"

"नही, नही, दिन-भर पखे के नीचे बैठे रहने से भी सिरदर्द होने लगता है। चलिए न इण्डिया गेट तक घूम आए। वहा इस समय कुछ अच्छा लगता है।"

शान्ता बोली, "हम तो दोनो आज सुबह वहा गए थे। पास तो है ही, आप लोग हो आइए, मेरे यहा तो कुछ लोग खाने पर आ रहे है।"

मेहता बोले, "हा, हा, मैं भूल गया था, कल आपने बताया था।"

शान्ता बोली थी, "परन्तु आप सुनीता को लेकर घूम आइए। आठ साढे आठ बजे तक सुनीता लौट आना, क्योकि तब मेहमान आने लगेंगे !"

मेहता उठकर बाहर चले गए थे। मैंने शान्ता को कहा था, "क्यो जाल रचती हो ?"

"कुछ नही, तुम ठीक से रहना। ढग से बात करना।"

मैं बाहर चली आई थी। हम लोग पैदल ही चलने लगे थे। काका-नगर से इण्डिया गेट कुछ खास दूर नही है। रास्ते मे कोई कुछ नही बोला। मेहता के साथ जब-जब मैं अकेली रहती हू, वे बहुत कम बोलते

हैं। उस दिन भी हम मौन रहकर इण्डिया गेट तक पहुच गए। पानी के किनारे···थोडा अकेला स्थान पाकर हम लोग बैठ गए थे। फिर भी भीड बहुत थी क्योकि उस दिन रविवार था। छुट्टी के दिन साझ को तो इण्डिया गेट पर मेले की भाति लगता है। मुझे कुछ प्यास लग रही थी, मैंने दृष्टि घुमाकर देखा, कही ग्रासपास पीने योग्य पानी नही था। वैसे तो हम तालाब के किनारे ही बैठे थे। मेहता ने पूछा, "क्या बात है?"

"कुछ नही!"

"सुनीता, तुम इतने दिनो से मुझे पहचानती हो, फिर भी नवपरिचितों-सा व्यवहार किया करती हो।"

उस दिन पहली बार मेहता ने मुझे 'तुम' कहकर सम्बोधित किया था। मुझे बहुत अच्छा लगा। शरीर मे एक सुख की लहर दौड गई थी। मैने कह ही दिया, "मुझे प्यास लगी है।"

मेहता उठकर पानी के स्टाल तक जाने को हुए कि एक आइसक्रीम-वाला आ गया था; उन्होने उससे दो आइसक्रीम ले ली थी। एक उन्होंने खाई और एक मैने।

मेहता टाग फैलाकर अपनी दोनो बाहुओ का सहारा लेकर बैठ गए थे। मेरी अगुलिया अनायास ही पानी से खेलने लगी थी। कुछ ही दूरी पर एक नीला कमल खडा था। दूर-सदूर तक फैला तालाब। ऊपर विस्तीर्ण नीला आकाश। नीचे अछोर हरी धरती। कमल के उस परिवेश ने मुझे विमोहित-सा कर दिया था। मैं उसको तोडने की लालसा को दवा न सकी, हाथ बढाकर तोडने की चेष्टा मे, कब, किस समय आवश्यकता से अधिक पानी मे झुक गई, कमल पकड़ लिया, परन्तु तालाव की गोद मे समा गई होती यदि बीच मे ही मेहता ने सभालकर फिर पीछे ठीक से बैठा न दिया होता। तभी मुझे कुतुब की सीढियोवाली घटना याद हो आई। मेरे अधरसंपुट मे क्रीडा लालिमा की लहर बनकर समा गई। मेहता धीरे से बड़े कोमल शब्दो मे बोले थे, "सुनीता, अब तुम्हे एक पुरुष की बलवान बाहो का सहारा चाहिए, भावना के लोक मे बहुत दिन तक विचर चुकी।"

मैंने मुह ऊपर उठाकर देखा था, फैलती हुई साझ के साये लम्बे हो जाने से उनकी आखो का भाव ठीक-ठीक न जान पाई थी। परन्तु शब्दो की कोमलता ने एक नया अकल्पित एव अविस्मरणीय स्फुरण मेरे अन्तर मे उत्पन्न कर दिया था, जो मेरे रोम-रोम को पुलकित और विकम्पित बनाए जा रहा था।

मैं नि.शब्द। जैसे शब्दो का और मेरा परिचय कभी न रहा हो।

"तुमने उत्तर नही दिया सुनीता।" मेहता उस दिन मेरे अन्तर की बात निकलवा ही लेना चाहते थे।

"क्यो ? क्या बलवान पुरुष की बाहो का सहारा ही जीवन है ?"

"नही, वह जीवन नही केवल सहारा है। नारी की पद-मर्यादा और अस्तित्व को बनाए रखने का स्तम्भ।"

"होगा कभी, पर आज नारी सब क्षेत्रो मे उन्नति के पथ पर है, अपनी पद-मर्यादा की स्वय रक्षक है, वह दिन दूर नही जब भारत की सामाजिक व्यवस्था भी उसे उचित सम्मान देगी।"

"हा, इसमे कोई शका की बात नही है। परन्तु तुम टाल क्यो रही हो ? मैं आज की नारी की बात नही, वरन् तुम्हारी बात कह रहा था।"

मैं क्या उत्तर देती ! भला यह भी कोई पूछने की बात थी ! मेहता फिर बोले थे, "कब तक यू कर्ज़न रोड के होस्टल मे रहने का इरादा है ?"

इन बहकी-बहकी बातो का मैं क्या उत्तर देती ! परन्तु ये बातें उस दिन मेरे भीतर असीम सुख का सचार कर रही थी। मानो मेरे सभी विचार, सभी कामनाए, सभी स्वप्न पिघलकर मुझे सज्ञाहीन बनाए दे रहे थे।

"मैंने पहले भी एक बार कहा था, वहा तुम्हारा रहना मुझे कुछ जचता नही, अब समय आ गया है कि तुम मेरे घर रहने के लिये चली आओ। ···मेरे साथ विवाह करोगी सुनीता ?"

मेरी जैसे सुनकर सास की गति ही बन्द हो गई थी। इतनी बडी बात की आशा मुझे नही थी। दिनेश तो प्रेम का खेल खेलकर रह गया था।

मेहता ने तो प्रेम का अभिनय किया ही नही, सीधे अपना अधिकार बता दिया था। मैं इतनी बडी मर्यादा की अधिकारिणी नही हूं यह मैं बता देना चाहती थी। बोली, "आपने बहुत बडी बात कह दी। आप नही जानते, जान जाएगे तो मुझे इतना महत्त्व नही देंगे।"

"मेरा तुम्हारे प्रति जो प्रेम है, आस्था है, वह अडिग है। क्योकि वह पहली दृष्टि मे उत्पन्न हुई सस्ती भावना नही बल्कि वर्षों से पलता हुआ अकुर है, जिसको तुमने मेरे हृदय मे रोपा है, और मेरी ममता की अगुलियो ने सहलाया है, करुणा की बूदो ने नहलाया है, मन के अरमानो ने दुलराया है। यह अंकुर अब कभी सूख नहीं सकता सुनीता!"

"मेरे विगत जीवन की एक भूल इस अकुर को उखाडकर फेंक सकती है।"

मेरा हाथ अपने हाथ मे लेते हुए मेहता बोले थे, "कभी नही, यदि तुम्हारा सकेत दिनेश की ओर है तो तुम्हे यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस दिन तुम्हारी कामनी भाभी से इसके बारे मे जाना था, मेरी आस्था तुम्हारे प्रति दुगुनी हो गई थी। बचपन मे तुम उसकी ओर झुक गईं, जब जाना कि वह एक बच्चे का पिता बन गया है, तो तुमने उससे स्वय ही, जान-बूझकर सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया था। यदि उस अपने त्याग को या सम्बन्ध को पश्चात्ताप की दृष्टि से देखती हो तो यह तुम्हारा भ्रम है।"

उस सुख की बेला मे भी मेरी आखें गीली हो आई थी। मेहता ही एक पहले व्यक्ति थे जिन्होने मेरे इस सम्बन्ध को सहानुभूतिपूर्वक देखा था, समझा था। भाभी और कुसुम भी मेरे प्रति कोमल थी, परन्तु वे मेरी स्थिति मे कुछ परिवर्तन नही ला सकी थी। मेहता तो मुझे नये जीवन का सन्देश दे रहे थे, निमन्त्रण दे रहे थे, परन्तु मन मे कही कुछ उलझा-उलझा था। बार-बार ठोकर, व्यग्य और उपेक्षा सहते-सहते यह मन सतर्क हो उठा था। बोली, "मुझे आठ दिन का समय दीजिए। इस बीच आप भी इसपर फिर से विचार कर लीजिए। मैं आपके योग्य नही

हू, मुझे इसी बात का भय है।"

"तुम अपने प्रति अन्याय कर रही हो सुनीता। लेकिन तुम्हारी विनम्रता या मेरे लिए अनुपयुक्त और अयोग्य होने का भय नये जागे हुए प्रेम की सर्वप्रथम भावना और विशेषता है, जिसे देखकर मुझे कुछ आशा बध रही है कि तुम मेरे प्रस्ताव को ठुकराओगी नही।"

सुनकर मैं धीरे से मुस्करा-भर दी थी। उठकर खड़ी होती हुई बोली थी, "चलिए, अब देर हो गई, शान्ता राह देख रही होगी।"

पिछले आठ दिनो मे मैंने खूब सोचा है। बार-बार मुझे शान्ता की बातें याद आ जाती हैं। फिर मेहता का मूक और नि स्वार्थ प्रेम तो अपनी ओर बरबस ही खीच रहा है। नि स्वार्थ तो है ही" मेहता तो मेरे रुपये के विषय मे भी नही जानते। विचारो के इतने महान कि दिनेश के विषय मे जानकर भी उनका मन सकुचित नही हुआ। सबसे ऊपर मेरी अपनी भावनाएं जो मेरे ऊपर प्रात कालीन धूप-सी छाती जा रही हैं। मेहता के प्रति मेरे हृदय मे जो परमोत्कृष्ट प्रेम है, आदर है, उसमे सात्त्विकता ही सात्त्विकता है, यह दुर्दम्य और दुर्जय क्षुधा शारीरिक नही आत्मिक है। इधर कुछ दिनो मे मन मे जो एक नई भावना पनपी है, ऐसा लगता है कि वह यहा, बरसो से थी, जब से मैंने पहली बार मेहता को झासी मे देखा था, परन्तु उसकी अनुपम अनुभूति अभी उसी दिन से हुई है। मन की सुकोमल भावनाए फिर से मुखरित हो उठी हैं।

आज शाम छ. बजे मेहता अपने प्रश्न का उत्तर लेने आएगे तो मैं कैसे कहूगी कि मुझे स्वीकार है, वह सब कुछ जो आप कहते हैं या कहेगे।

आज रविवार है, रूजी भी कमरे मे ही है, शायद शाम को कही जाएगी, परन्तु मेरा परिवर्तन उससे भी छुपा नही रहा। आखिर उसने पूछ ही लिया, "सुनीता, कुछ खोई-खोई लग रही हो, क्या कुछ खो गया है?"

मैंने हाथ का तौलिया उसपर फेंक दिया और मुस्करा पड़ी। पता नहीं उसने क्या अर्थ लगाया, या मेरे मुखरित हाव-भाव ही सब कह गए

कि वह बोली, "विष यू गुड लक सुनीता ! गॉड तुम्हे सुख देगे। तुम बहुत भाग्यशाली हो !"

"धत् ! तुमको तो मैंने कुछ कहा नही, फिर ऐसी बातें क्यो कर रही हो ?"

"परन्तु तुम्हारा फेस तो सब बता रहा है। पिछले आठ-दस रोज़ से ही मुझे कुछ शक था।"

मैं चुप रही।

"तुम बडी भाग्यवान हो सुनीता, नही तो इतनी जल्दी कोई भी होस्टल की लडकी अपने लिए कुछ ठीक नही कर पाई। तुम सुशील हो, इसीलिए गॉड की दया है तुमपर।"

मैं जानती हू, होस्टल की अधिकाश युवतियां प्राय अपने लिए वर के चक्कर मे रहती हैं परन्तु जल्दी सफलता नही पाती। रूजी भी तो चार बरसो से यहा है और कई पुरुष इसे विवाह का विश्वास दिलाकर घुमा चुके हैं। उसके प्रति मेरी करुणा उमड आई। मैं इतना ही बोल सकी, "रूजी, जब मैं इस होस्टल मे आई थी, तो विवाह की समस्या लेकर नही, परन्तु पारिवारिक कलह के कारण आई थी। अनजाने मे अनचाहे ही यह सब कुछ हो गया है या यू कहो कि बरसो से मन मे था परन्तु अभी सामने आया है।"

रूजी बोली, "कौन है ? कहा रहता है ?"

मैंने कहा, "आज साझ को होस्टल के बाहर आएगे, मै तुम्हारा परिचय करवा दूगी। यही एक बैंक के मैनेजर हैं, मेरे भाई के पुराने मित्र हैं।"

यह सुनकर रूजी बोली, "ओह !" जैसे भाई के पुराने मित्र होने से उसने जो रोमाचित कल्पना मेरे रोमास के प्रति की थी, उसे ठेस लगी।

शाम को ठीक समय पर तैयार होकर मै होस्टल के बाहर आ गई। रूजी पहले ही कही चली गई थी। मैने आज हलके नीले रग की सिल्क की साडी और उसी रग का ब्लाउज़ पहना है। स्वय अपने मे ही मैं शर्मा रही हू '

मेरे पास एक टैक्सी आकर रुकी, मेहता ने दरवाजा खोला मैं भीतर टैक्सी में बैठ गई। इण्डिया गेट आकर हम अपने उसी दिनवाले परिचित स्थान पर बैठ गए। बैठते ही वे बोले, "अब देखें भाग्य क्या निर्णय करता है! कहो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?"

मैंने लजाकर सिर झुका लिया। उन्होंने फिर पूछा, "बोलो! अब अधिक देर तक दुराने से क्या लाभ ?"

मैंने धीरे से कहा, "पूजा के फूल जैसे देवता के चरणों पर चढने से पहले छुपे रहते हैं, उसी प्रकार मन की भावनाए-कामनाए भी किसीसे कहनी नही चाहिए।"

"परन्तु पुजारी तो अपने देवता के सामने अपना हृदय प्रकट कर देता है, तभी न वरदान पाता है!"

"उहू, पुजारी कभी मुह खोलकर नही मागता, देवता अपने ही आप जान जाता है।" मेरे इस तर्क ने मेहता को निरुत्तर कर दिया। मैंने विजय की उमग मे पलकें पसारकर देखा, मेहता की मुस्काने अमृत घोल गईं। मेरा रोम पुलकित हो गया। मेहता ने मुझे अपने निकट खीच लिया। मुझे अपने हृदय से लगाते हुए बोले,"बस,बस, सुनीता, मैं सब जान गया। तुम्हे और कुछ कहने की आवश्यकता नही। अब और दु ख तथा उपेक्षा भी सहने की जरूरत नही। मैं जीवन-भर तुम्हे कोई दु ख न उठाने दूगा। आज तक जो तुमने सहा है, वह फिर कही तुम्हारे निकट आने भी न दूगा सुनीता।"

मेरा सिर उनके कन्धे से सटा है, उनके हाथ मेरे बालो को सहला रहे हैं। मेरी आखो से सुख के बाहुल्य से अश्रु की धारा वह रही है ''न जाने कितना समय बीत गया प्रीति के उस प्रथम मिलन मे। फिर धीरे से मेहता ने मेरा चेहरा अपने हाथो मे लिया और बोले, "सुनीता, तुम रूपसी तो हो ही, परन्तु आज की छवि तो अलौकिक दिखाई दे रही है। तुम्हारे चेहरे मे अन्तर की निर्मल प्रतिभा है, शात मस्तक पर प्रेम की ज्योत्सना फैली है। तुम्हारे शांत और गौरवर्णवाले चेहरे से एक

ऐसी आभा फैल रही है जो एक अर्धखिले फूल के चारो ओर फैलती है। दृष्टि को दो क्षण उसपर टिकना ही पडता है।"

मैंने धीरे से अपने को छुड़ाते हुए कहा, "मैंने तो आपको समाज-सेवक के रूप मे ही जाना है···आप इतना अच्छा कवितापूर्ण किसी युवती का वर्णन भी कर सकते हैं, यह आज ही जाना।"

मेरा इतना कहना था कि वे खिलखिलाकर हस दिए। बोले,"अभी तो धीरे-धीरे बहुत कुछ जानोगी। हा, यह तो बताओ, अपने घरवालो को कब बताओगी ?"

मैं क्या कहती कि मेरे घरवाले मेरे विवाह के प्रति उदासीन हैं। मैंने कहा, "उन्हे बताना कोई आवश्यक है ?"

"नही , यदि तुम चाहो तो बता भी सकती हो।"

"तो अभी नही······फिर बाद मे······।"

"सिवल मैरिज तुम्हे पसन्द है ?"

"नही, नही," मैंने चौंककर कहा, "आप तो जानते हैं, धर्म मे मेरी कितनी आस्था है।"

"ओह, मैं भूल गया था ! क्या अभी भी साझ-सवेरे पूजा करती हो ?"

"पूजा के बिना देवता को कैसे पाती !"

"तुम किसी सीमा तक ठीक कहती हो सुनीता । पूजा करने से किसी फल की प्राप्ति हो न हो, पर मन को जो अलौकिक सुख मिलता है, मस्तिष्क को जो अपूर्व शान्ति की अनुभूति होती है, वह अनुपम है। धर्म व्यक्ति के भौतिक सुख-साफल्य का साधन नही, प्रेरक तत्त्व भी नही, बल्कि हमारे भीतर की एक प्रकाशरेखा है, जो हमारे आगे-आगे चलती है। जिसपर चलने से सुख और शान्ति की अनुपम अनुभूति होती है।"

थोडी देर तक हम वही बैठे उतरती हुई साझ का विमोहित कर देने-वाला स्वरूप निरखते रहे। फिर मेहता ने हाथ बढाकर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं खडी हो गई और मेहता के हाथ मे अपना हाथ दिए चल पड़ी, अपने भविष्य के अरुणोदय की ओर।

१५

मुझे अपने नये घर आए हुए छ महीने बीत गए हैं। मैंने इन छ: महीनों में जो अकलुष आनद पाया है, वह इस पृथ्वी पर ही मिल सकता है'''अन्य कहीं भी दुर्लभ है। मेहता तो मुझे चाहते ही हैं, उनके घरवाले भी मुझे बहुत दुलारते हैं। नव कोई कुछ दिन दिल्ली मे मेरे पास थे। फिर मेहता और मैं श्रीनगर चले गए, मधुमास मनाने के लिए। हर घडी, हर नये सूरज की किरण मेरे लिए प्रसन्नता तथा अथाह आह्लाद का सन्देश लाती है। परन्तु इन आनन्द की घडियो मे, इन मुग्धता के क्षणो मे अनजाने में ही बडे दादा की याद चली आती है'' भाभी की, डाक्टर भैया की, कामनी भाभी की स्मृति विकल कर देती है। सोम भैया को मिलने के लिए मन छटपटा जाता है। मैं सब कुछ भूल गई हू ' सब यातनाए, सब उपेक्षाए, सब दु ख भूल गई हू। शायद रक्त की गरिमा ऐसी ही होती है। बहिन अपने घर मे सुखी रहकर भी भाई-भाभी की स्मृति सदैव आखो मे लिए घूमती है। एक दिन मेहता से मैंने कहा, "चलिए, कुछ दिन बनारस चलकर रहा जाए। आखिर तो बडे दादा मेरे भाई हैं' मेरे पोषक हैं।"

"हा, जब कहोगी तभी चल दिया जाएगा।" कहकर वे स्नानगृह में चले गए। मैं रसोईघर मे जाने को प्रस्तुत हुई कि उस दिन की डाक मुझे महाराज ने लाकर दी। मैंने देखा, एक रजिस्टर्ड लैटर है। उत्सुकतावश मैंने पहले वही लिफाफा खोला, पढा तो जैसे पृथ्वी घूम गई।

वे स्नान कर मेरे पास ही खडे हैं, मैंने पत्र उन्हें दे दिया। पत्र कानपुर के न्यायालय की ओर से मुकदमे की डिग्री था मेरे नाम पर।

बडे दादा ने मुझपर केस किया है। बडे दादा ने ही क्यों, तीनो भाइयों ने मिलकर कहा है कि मैंने उन कैश-सर्टिफिकेट्स पर हस्ताक्षर करने को मना कर दिया है जिनपर घर से भाग जाने पर मेरा कोई अधिकार नहीं

है, क्योकि मेरे पिताजी के समूचे धन के अधिकारी उनके लडके है···उनकी वसीयत मे उनकी लड़की का कही उल्लेख नही।

मेहता बोले, "कुछ समझाकर कहो सुनीता।"

"आप शायद आज तक नही जानते कि मेरे पिताजी ने मेरे लिए तीस हज़ार के कैश-सर्टिफिकेट लिए थे जिनकी कीमत सूद मिलाते-मिलाते आज पैंतालीस हज़ार के लगभग है। मैंने चाचाजी के मुह से सुना था कि वह रकम पिताजी ने मेरे विवाह के लिए रखी थी, यदि उसमे से कुछ पैसा बचे तो वह भी मेरा ही होगा, उसपर किसीका अधिकार नही। यह बात मैं बहुत दिन तक नही जानती थी। बडे दादा चाहते थे कि मैं इस बात से अनभिज्ञ रहू और मेरी इसी स्थिति मे वे मेरा विवाह कर दे और उसके उपरान्त उन कैश-सर्टिफिकेट्स पर मेरे हस्ताक्षर ले ले।"

"तुमने हस्ताक्षर करने को कब मना किया था?"

"मैने कभी मना नही किया, परन्तु हा मुझे इस बात का ज्ञान था कि पिताजी ने मेरे लिए कुछ रुपये छोडे है।"

एक 'हू' कहकर वे दो क्षण मौन हो गए। फिर बोले, "रुपया तुम्हारा है, तुम्हारे पिताजी ने छोडा है, वह तो किसी भी प्रकार तुम्हारे बडे दादा को नही मिल सकता। परन्तु इतने पैसे का क्या होगा? तुम अभी पत्र द्वारा अपना रुपया अपने भाइयो मे बाटने की सूचना न्यायालय को दे दो।"

मन मे आया कि अभी इसी क्षण इस देवता के पाव चूम लू जिसे ससार का कोई लोभ खीच नही सकता। पर इतना ही बोली, "अच्छा, यदि रुपया मुझे देना ही है तो मैं कानपुर एक बार अवश्य जाऊगी। देखू तो, बडे दादा न्यायालय मे मुझे कैसे बुलाते हैं? क्या उन्हे कोई लाज नही?" वे चुप रहे, उत्तर नही दिया।

न्यायालय द्वारा दी गई मुकदमे की तारीख निकट आ गई, परन्तु मुझे ऐसी कोई सूचना नही मिली जिससे मेरा कचहरी मे जाना बद हो जाए। हाय भगवान, क्या मेरे घर की लाज इस प्रकार घर-घर की बात का विषय बनेगी! क्या बडे दादा मुझे सच मे ही कचहरी मे बुलाएगे—

आज चाचाजी होते तो बडे दादा का इतना साहस ही न होता ।

ये वही बडे दादा है जिन्होंने अपनी अनुमति से मुझे मा के सब आभूषणो की मालकिन बनाया था। आज वे पिताजी द्वारा मुझे दिया गया रुपया लेने के लिए मेरा कचहरी मे अपमान करेंगे। कल तक जिस घर की आन के सामने कानपुर झुकता था, आज वह कानाफूमी का विषय बन गया है। फिर भी मैंने धैर्य बाबा और मेहता के साथ कानपुर चल दी।

कानपुर पहुचकर सामान मैंने स्टेशन पर ही छोड दिया। मेहता को लेकर मैं पहले चाचीजी के घर आई। चाचीजी ने उन्हे तो गोल कमरे बैठा दिया, दो-चार बातें भी की, परन्तु मेरी ओर घृणा की दृष्टि से देखते हुए बोली, "चलो सुनीता, तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

वे मुझे अपने कमरे मे ले आईं। आते ही बरसने लगी, "मैं तुम्हे बचपन ही से जानती थी सुनीता कि तू इस घर की नीव तक हिला देगी। इस घर की ईट-ईट बजा देगी। पहले दिन से ही कुलक्षणी थी तू। घर से भागकर जाते हुए पाव कटकर क्यो न गिर गए ! खसम की इतनी चाहना थी, तो मुझे कहती।"

मुझे चुप देखकर जैसे उनके क्रोध की अग्नि दुगुनी प्रज्वलित हो उठी, "जब इस घर के लोग अच्छे नही तो इस घर का पैसा इतना प्यारा क्यो ? सारा कानपुर थू-थू कर रहा है तुम्हारे नाम पर।"

"और बडे दादा ने जो मुकदमा किया है मुझपर ?"

"मुकदमा नही करता तो क्या करता। अपने पिता की मेहनत से कमाई गई रकम पर तुम जैसी डाकिनी का अधिकार होते देखता ? पवित्रता पर पाप को चढ जाने देता ?"

मैं और अधिक न सुन सकी। मेहता को लेकर अपने घर आई। सोम भैया बाहर बराण्डे मे हैं जानकर इस दुख की वेला मे भी कुछ ढाढस हुआ। परन्तु उन्होने मुझे देखते ही घर के किवाड बद कर लिए।

यह क्या ? हे भगवान ! मैं आज इतनी अछूत हो गई ! पैसे ने बहिन के स्नेह को तुच्छ कर दिया, परास्त कर दिया !!

मेरी आखो मे आसू आ गए। मेहता ने चुप रहकर मुझे चलने का सकेत किया। मैं चली आई। स्टेशन पर आकर प्रतीक्षालय मे जाने ही लगी थी कि मेरे मामा, उनके लडके और कुछ दूर के रिश्तेदार पहुंच गए। मुझे देखते ही, भीड की परवाह न करते हुए मामा बोले, "सुनीता, तुम देवता जैसे भाई को धोखा देकर एक लफगे के साथ क्यो भाग गई थी ? जब भागकर चली ही गई तो आज यह काला मुह लेकर कानपुर क्यो आई हो ? अब इस घर से तथा इस घर के रुपये से तुम्हारा क्या प्रयोजन ? कल कचहरी मे रुपये अपने भाइयो के नाम लिख देना।"

न जाने मेहता कब पास आकर खडे हो गए। बोले, "सुनीता को रुपये की आवश्यकता नही, आप जाकर अपने घरवालो से कह दीजिए।"

मामा बोले, "अजी यदि आवश्यकता नही तो यू झगडा करने यहा क्यो चली आई, वही से मुख्त्यारनामा लिखकर क्यो नही भेज दिया ?"

सुनकर मुझे आग लग गई। मैंने एक कागज़ लेकर उसपर लिख दिया, "मेरे रुपये मेरे भाइयो के हैं।" मामा ने उसी समय एक टिकट उस पर लगा दी, मेरे हस्ताक्षर लेकर वे चले गए।

मैं अगली गाडी से दिल्ली आ गई हू। कैसी विडम्बना ! कैसा विषाद ! सारा कानपुर मेरे नाम पर थू-थू कर रहा है। बडे दादा को लोग देवता कहते हैं। मेहता को लफंगा, चोर, बदमाश, उचक्का !

बडे दादा मनुष्य नहीं साक्षात् कोई अवतार हैं, जिन्होने अपने छोटे-छोटे बहिन-भाइयो को बडा किया, पाला-पोसा, मा-बाप का दुलार दिया। आज अपने पालनेवाले के नाम पर काला टीका लगाकर सुनीता किस मुह से अपना अधिकार लेने आई है ?

बड़े दादा जैसे समर्थ व्यक्ति इस ससार मे कभी-कभी उत्पन्न होते हैं। जिनके आगे आज सारा समाज झुकता है।

◇ ◇ ◇